श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष–८ ~~मार्च १९८९~~ फरवरी 1989 अंक–9

विवेक शिक्षा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी —४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० सैल पाण्डेय —४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप —नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—फुरालो (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द बनढनिया - कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी कलकत्ता (प० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा - समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री विनुभाई भलाभाई पंड्या —मेहा (गुजरात)
५४. श्री एम० सी० डाबरीवाला - कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन बंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन—कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस - दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु सेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण निशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा — इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे — दादर, बम्बई

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. भजन	श्रीसारदा तनय	४
३. एक ऐतिहासिक पत्र		५
४. स्वामी विवेकानन्द	सुभाष चन्द्र बोस	६
५. स्वामी विवेकानन्द ने कहा था	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	७
६. मनीषियों की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द	रोमाँ रोलाँ	८
७. स्वामी विवेकानन्द और हम	स्वामी निर्जरानन्द	११
८. स्वामीजी के प्रति (कविता)	श्री यश मालवीय	१४
९. हिन्दू-शिक्षण दर्शन	स्वामी हर्षानन्द	१५
१०. वितर्क बाधाएँ	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१७
११. महान् सन्त कमलाकान्त	डॉ० निर्मल कुमार मिश्र	२१
१२. विवेक चूडामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२३
१३ आदिवासी क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन का कार्य	आब्जर्वर	२९
१४. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३१

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

विवेक शिखा के पाठकों को बड़े आह्लाद के साथ हम सूचित करते हैं कि गत २४ जनवरी, १९८१ ई०, मंगलवार को परम पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ और मिशन के द्वादश महाध्यक्ष के रूप में अधिष्ठित हुए हैं। नये महाध्यक्ष के रूप में उन्हें हम आनन्द सम्वलित हृदय से श्रद्धावनत हो बारम्बार अपने आन्तरिक प्रणाम निवेदित करते हैं।

महाध्यक्ष के पद पर आसीन होने के पूर्व प्रायः विगत १४ वर्षों से पूजनीय स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और मिशन के अन्यतम सहाध्यक्ष थे। सहाध्यक्ष के रूप में उनका निर्वाचन अप्रैल, १९७५ ई० में हुआ था। इसके पहले ये रामकृष्ण मिशन के विभिन्न शाखा केन्द्रों के सचिव एवं रामकृष्ण मठ मिशन के सह सचिव भी रह चुके हैं।

पूजनीय महाराजजी का जन्म हुआ सन् १९०१ ई० में। कलकत्ता संस्कृत कॉलेज से दर्शन शास्त्र (Philosophy) में स्नातक की डिग्री प्राप्त करने के थोड़े ही समय वाद सन् १९२३ ई० में श्रीरामकृष्ण देव के साक्षात् शिष्य एवं रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम महासचिव श्रीमत् स्वामी सारदानन्दजी महाराज से मंत्र दीक्षा ग्रहणकर आपने रामकृष्ण संघ में योगदान किया। इसके पूर्व कलकत्ते के बागबाजार स्थित एक शिव मन्दिर में ये ब्रह्मचारी का कठिन जीवन व्यतीत करते थे।

पाँच वर्षों के वाद सन् १९२८ ई. में श्रीरामकृष्ण के लीला पार्षद् एवं रामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी शिवानन्दजी महाराज (महापुरुष महाराज) ने इन्हें संन्यास दीक्षा दी थी। जीवन के प्रारम्भिक दिनों में पूजनीय महाराज ने हिमालय में कठिन तपस्याएँ भी की थीं। १९२८ ई० तक बेलुड़ मठ में कार्यरत रहने के उपरान्त १९३० ई० तक ये रामकृष्ण मिशन, ढाका के सह सचिव थे। तदुपरान्त मैसूर एवं मद्रास में संन्यासियों को धर्मशास्त्र की शिक्षा दी तथा विश्व के अनेकानेक धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। आप १९३६ ई० में मिशन के शिलौंग केन्द्र के सचिव बने तथा १९४५ ई० तक उत्तर पूर्वांचलों के गरीबों एवं जनजाति के लोगों की सेवा की।

१९४५ से १९६६ ई० के दीर्घ २१ वर्षों तक पूज्यपाद महाराज जी ने रामकृष्ण आश्रम, राजकोट (गुजराज) के सचिव के रूप में रहकर गुजरात में रामकृष्ण भावधारा के प्रचार-प्रसार में अविस्मरणीय कार्य किये।

१९६५ ई० में आप रामकृष्ण मठ के न्यासी एवं रामकृष्ण मिशन की कार्यकारिणो समिति के सदस्य निर्वाचित हुए।

१९६६ ई० में रामकृष्ण मठ एवं मिशन के सह सचिव के रूप में निर्वाचित होकर पूजनीय महाराज जी पुनः बेलुड़ मठ आये और १९७५ ई० में रामकृष्ण मठ एवं मिशन के सहाध्यक्ष के पद को इन्होंने विभूषित किया। तब से महाध्यक्ष होने के प्रायः १४ वर्षों की दीर्घ अवधि तक पूज्यपाद

महाराजजी ने रामकृष्ण योगोद्यान मठ, काँकुड़गाछी के अध्यक्ष का भी दायित्व बड़ी कुशलता से निर्वाह किया।

पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने देश एवं विदेश के अनेक स्थानों की यात्रा की है और अपने आध्यात्मिक प्रवचनों तथा मंत्र दीक्षा के द्वारा सहस्रों आर्त जिज्ञासुओं की आध्यात्मिक पिपासा दूर की है एवं रामकृष्ण विवेकानन्द भाव-धारा के अनुसार उनके जीवन निर्माण में वांछनीय भूमिका निभायी है।

पूज्य महाराजजी को श्री श्री माँ सारदा देवी के पावन चरणों को स्पर्श करने तथा श्रीरामकृष्ण देव के १० संन्यासी शिष्यों के साहचर्य में रहने का दुर्लभ सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था एवं बेलुड़ मठ में कुछ वर्षों तक इन्होंने महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्दजी महाराज) की सेवा भी की थी।

पूज्यपाद महाराज जी ज्ञान, भक्ति, और कर्म के सचल संगम हैं, निरंजन प्रेम और विलक्षण वैराग्य के अधिराज हैं तथा आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न महापुरुष के साथ ही प्रकांड पंडित, महा मनीषी और विचक्षण वाग्मी भी हैं। आप संस्कृत-साहित्य एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। ५ खंडों में प्रकाशित "श्री श्री रामकृष्ण कथामृत प्रसंग" नामक आपकी बंगला पुस्तक 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत का एक श्रेष्ठ भाष्य स्वरूप है। इसके अतिरिक्त "शरणागति" "उपनिषद ओ आजकेर मानुष" तथा "मुण्डकोपनिषद्" नामक पुस्तकों की भी इन्होंने रचना की है। ये पुस्तकें सारगर्भित किन्तु सरल एवं सुबोध्य हैं। इनके द्वारा लिखी 'कठोपनिषद्' नामक पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

पूजनीय महाराज केवल विद्वान ही नहीं, स्नेह एवं आनन्द की मूर्ति हैं। जो कोई भी इनके सान्निध्य में आता है वह इनका असीम स्नेह पाकर धन्य हो जाता है। इनके श्री मुख से निकले प्रत्येक शब्द से मानो आनन्द निर्झर झरता रहता है। इन सदानन्दमय महापुरुष का दर्शन एवं इनकी अमृतमय वाणी का श्रवण कर सहज ही उन वैदिक ऋषि की याद आ जाती है, जो स्वयं अमृत सागर में गोता लगाकर आनन्द के साथ पुकार-पुकार कर मानव से कहते हैं—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्य वर्णं तमसः परस्तात्
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के इन द्वादश संघगुरु को हम शत कोटि प्रणाम निवेदित करते हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्देव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

*

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा को एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—८ फरवरी—१९८९ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

दूध और पानी को एक जगह रखने पर दोनों मिल जाते हैं, दूध अलग नहीं रह जाता। इसी प्रकार, धर्मपिपासु नया साधक यदि संसार में सभी प्रकार के लोगों के साथ मिलता रहे तो वह अपना आदर्श तो खो ही बैठता है, साथ ही उसके भीतर से पहले का विश्वास, भक्ति, उत्साह सब न जाने कहाँ चला जाता है, उसे इसका पता तक नहीं चल पाता।

(२)

राजा के पास जाना हो तो पहले द्वार पर सिपाही-सन्तरियों की बहुत खुशामद करनी पड़ती है। इसी प्रकार राजाधिराज ईश्वर के समीप पहुँचना हो तो साधन-भजन, सत्संग और भक्तसेवा आदि अनेक उपाय करने पड़ते हैं।

(३)

मनुष्य के भीतर भगवद्भाव कब तक बना रहता है? लोहा जब तक आग में रहता है तभी तक लाल रहता है, आग के बाहर निकलते ही फिर वह काला हो जाता है। इसी तरह मनुष्य जब तक भगवान् के साथ युक्त रहता है तभी तक उसमें भगवद्भाव बना रहता है।

(४)

यह नहीं कि भगवान् हमें भोजन देते हैं इसलिए वे दयामय हैं—पिता अपनी सन्तान को भोजन तो देगा ही। वास्तव में वे इसलिए दया मय हैं कि वे हमें कुपथ में जाने से बचाते हैं, मोह या प्रलोभन से हमारी रक्षा करते हैं।

(५)

दुनिया में चारों कोने घूम आओ, कहीं कुछ, नहीं मिलेगा। जो यहां (अपने हृदय में) है, वहाँ भी है।

करुणा-जल बरसाओ

—सारदा तनय

(राग—मल्हार : ताल—तीन ताल)

बरसाओ ऽऽ हे करुणा-घन
करुणा-जल बरसाओ । (अब तो)
ताप-त्रय तपन दहे देह-मन
नाथ शीघ्र सरसाओ ॥ध्रु०

नीरस मरु-सम जीवन में मम
प्रेम-सुधा बरसाओ।
शोकानल से झुलसे हिय को
ठाकुर अब हरसाओ ॥१

चित-चातक दरसन का प्यासा,
प्रभु अब क्यों तरसाओ ।
जनम-जनम की आस पुरा दो,
एक झलक दरसाओ ॥२
करुणा-जल बरसाओ । (अब तो)

□

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का—

एक ऐतिहासिक पत्र

LLYOD TRIESTINO
PIROSCAF CORIE VIRDE
6.3.1936

परम श्रद्धेय स्वामीजी,

आपका २ दिसम्बर का पत्र मुझे यथा समय मिल गया था, किन्तु कई कारणों से शीघ्र उत्तर नहीं दे सका। आपने जिस लेख के संबंध में पत्र लिखा था, उसे प्रधानतः दो कारणों से नहीं लिख सका। प्रथमतः श्री रामकृष्ण परमहंस के संबंध में कुछ लिखने का साहस ही नहीं होता; द्वितीयतः पिछले दो-तीन महिनों से मैं लगातार घूमता रहा हूँ एवं एक स्थान पर स्थिर होकर बैठ नहीं पाया हूँ।

फिर भी, आपने मुझे याद किया है, इसके लिए मैं आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के प्रति मैं कितना ऋणी हूँ, इसे शब्दों में किस प्रकार व्यक्त करूँ? उनके पुण्य प्रभाव से ही मेरे जीवन में जागृति का प्रथम प्रकाश आया।

निवेदिता की तरह मैं भी मानता हूँ कि रामकृष्ण एवं विवेकानन्द एक अखण्ड व्यक्तित्व के (स्वरूप के) दो रूप हैं। आज यदि स्वामीजी जीवित रहते तो वे निश्चय ही मेरे गुरु होते--अर्थात् उन्हें मैं निश्चय ही गुरु रूप में वरण करता। जो भी हो, जितने दिनों तक जीवित रहूँगा, उतने दिनों तक "रामकृष्ण-विवेकानन्द" का एकान्त अनुगत एवं अनुरक्त बना रहूँगा—यह कहने की आवश्यकता नहीं।

परसों हमलोग बम्बई पहुचेंगे। मेरा भक्तिपूर्ण प्रणाम ग्रहण कीजिएगा।

भवदीय
श्री सुभाष चन्द्र बोस

[उद्बोधन, अक्टूबर १९४८ से साभार संग्रहीत एवं अनूदित। अनुवादक—ब्र० बोध चैतन्य।]

स्वामी विवेकानन्द

—सुभाष चन्द्र बोस

स्वामी विवेकानन्द की बहुमुखी प्रतिभा की व्याख्या करना दुरूह है। मेरे समय के छात्र स्वामीजी के लेखों एवं व्याख्यानों से जिस प्रकार प्रभावित हुए थे, उस रूप में और किसी के द्वारा नहीं; ऐसा लगता है कि स्वामीजी ने ही उनलोगों की आशा-आकांक्षाओं को सम्पूर्ण रूप से प्रकट किया था। श्री रामकृष्णदेव के साथ स्वामीजी का अभिन्नत्व नहीं देखने से उनको यथार्थ रूप से समझना कठिन होगा। स्वामीजी की वाणी के माध्यम से ही वर्तमान स्वतंत्रता-आन्दोलन की नींव गढ़ी गयी है। भारतवर्ष को यदि स्वाधीन होना है, तो उसे मात्र हिन्दूधर्म अथवा इस्लाम धर्म का विशेष आवास-स्थान होने से नहीं चलेगा—उसे राष्ट्रीयता के आदर्श से अनुप्राणित होकर अन्य धर्मसम्प्रदायों का भी आवास-स्थान बनना होगा। रामकृष्ण-विवेकानन्द की जो वाणी है—धर्मसमन्वय की, वह प्रत्येक भारतवासी को सर्वान्तःकरण से ग्रहण करना होगा।

स्वामीजी ने त्याग एवं चरित्रगठन के ऊपर अधिक जोर दिया था। त्याग के बिना कोई भी उपलब्धि संभव नहीं। भारतवर्ष में महापुरुषों का अभाव नहीं है। भारत में ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों का जन्म हुआ है, जो अन्य देशों के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों के समकक्ष हैं। जिस बात की अत्यन्त आवश्यकता है, वह है जनसाधारण का जागरण। इसीलिए स्वामीजी कहते थे—"मनुष्य-निर्माण करना ही मेरा कर्तव्य है।"

स्वामीजी महान थे, क्योंकि उन्होंने प्राच्य एवं पाश्चात्य, धर्म एवं विज्ञान, अतीत एवं वर्तमान के बीच समन्वय स्थापित किया था। उनकी शिक्षा से देशवासियों ने पूर्ण आत्मसम्मान, आत्मविश्वास एवं आत्मप्रतिष्ठा का ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

[स्वामीजी की ६९ वीं जन्मतिथि के उपलक्ष्य में बेलुड़ मठ में आयोजित जनसभा में कलकत्ता के तत्कालीन मेयर सुभाष चन्द्र बोस का अध्यक्षीय भाषण। उद्बोधन की विवेकानन्द शतवार्षिकी संख्या से साभार संग्रहीत एवं अनूदित। अनुवादक—ब्र० बोध चैतन्य।]

स्वामी विवेकानन्द

—शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

मेरा यहाँ पर वक्तृता प्रदान करना उचित नहीं है, विशेषकर इसलिए कि मैंने अपने जीवन भर धर्म चर्चा नहीं की है। मैंने अपने जीवन में जितनी भी अभिज्ञता प्राप्त की है वह, जहाँ तक संभव है, मनुष्य जीवन के बीच रहकर ही की है।

स्वामीजी का आदर्श आज भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि पृथ्वीभर में व्याप्त हो गया है। देश की स्वाधीनता के लिए अभी सबसे अधिक आवश्यकता है अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग।

मेरा विश्वास है कि हमलोगों ने यदि स्वामीजी के आदर्श को आन्तरिक भाव से ग्रहण किया होता, तो देश और भी आगे बढ़ गया होता। हमलोगों ने वैसा नहीं किया, इसलिए उन्होंने अपने जीवन की अल्प अवधि के भीतर ही जो महान कार्य किया है वही हमलोगों को भुनाकर खाना होगा। उनके मित्र एवं शिष्यगण जिस आध्यात्मिकता के ही ऊपर सम्पूर्ण नजर दे रहे हैं, उससे भी अधिक वे दे गये हैं, वह है देश के प्रति प्रेम और आत्मत्याग करना। मैं स्वयं परलोक के लिए चिंतित नहीं हूँ।

देश की स्वाधीनता के द्वारा ही मैं अपनी चरम मुक्ति प्राप्त करूँगा। मुझे लगता है स्वामी विवेकानन्द की वाणी को हमलोग मात्र मुँह से ही उच्चारित करते हैं; वह हमारे भीतर नहीं पहुँची हैं; उसे हमने ठीक से हृदयंगम नहीं किया है, इसीलिए हमलोगों की कथनी एवं करनी में संघर्ष उत्पन्न होता है। स्वामीजी असत्य को सबसे अधिक घृणित कहकर निन्दा कर गये हैं।

(१९३२ ई० में बेलुड़ मठ में स्वामी विवेकानन्द जी की ६९ वीं जन्मतिथि के उपलक्ष्य में आयोजित जनसभा में बंगला के विख्यात साहित्यकार श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के भाषण का सारांश। उल्लेखनीय है कि इस सभा के सभापति थे कलकत्ता के तत्कालीन मेयर सुभाष चन्द्र बोस। उद्बोधन, मार्च १९२१ से साभार संग्रहीत एवं अनूदित। अनुवादक—ब्र० बोध चैतन्य)

★

स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में

—रोमाँ रोलाँ
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

वे (विवेकानन्द) शक्ति की सजीव प्रतिमा थे और मानवता के प्रति कर्म ही उनका सन्देश था। ...उनका सम्राट जैसा भाव ही उनका वैशिष्ट्य था। वे मानो एक जन्मजात महाराजा थे। भारत अथवा अमेरिका में जो कोई भी उनके सम्पर्क में आया, उनकी तेजस्विता के सम्मुख मस्तक झुकाने को बाध्य हुआ।

सितम्बर १८९३ ई० में शिकागो में आयोजित सर्वधर्म सम्मेलन के कार्डिनल गिबन्स द्वारा उद्घाटन के अवसर पर, जब तीस वर्ष का यह अज्ञात युवक प्रकट हुआ, तो उसकी भव्य उपस्थिति में अन्य सभी प्रतिनिधि विस्मृत हो गये। एंग्लो-सैक्सन जाति की विपुल श्रोतृमण्डली पहले तो उनके रंग के कारण उनके प्रति पूर्वग्रह से युक्त थी; पर उनका बल और सौंदर्य, उनका ओज और शालीनता उनके नेत्रों की गहरी चमक तथा प्रभावशाली मुद्रा देखकर, और जब उन्होंने बोलना आरंभ किया तो उनकी गुरु गम्भीर वाणी के भव्य संगीत को सुनकर, ठगी सी रह गयी। इन योद्धा उपदेशक ने संयुक्त राज्य अमेरिका पर गहरी छाप छोड़ी।

उन्हें कहीं भी गौण स्थान देने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। वे जहाँ भी जाते, उन्हें स्वत: ही सर्वोच्च स्थान हासिल हो जाता था। ....उन्हें देखते ही लोग उन्हें नायक, ईश्वरनिर्दिष्ट और आदेशदाता आचार्य के रूप में पहचान लेते। हिमालय पर्यटन के समय एक यात्री उन्हें देखते ही, उनका परिचय जाने बिना ही रुक गया और विस्मित होकर चिल्ला उठा, 'शिव....!' मानो उनके इष्टदेवता ने ही अपना नाम उनके ललाट पर अंकित कर दिया था।

उन्होंने अपनी आयु के अभी चालीस वर्ष भी पूरे नहीं किये थे कि उनका बलिष्ठ शरीर चिता पर सुला दिया गया। परन्तु उस चिता की अग्नि मानो अब भी प्रज्ज्वलित है। उसी चिता के भस्म से भारत की अन्तश्चेतना प्राचीन आख्यान के अलौकिक पक्षी फोनिक्स की भाँति नवजीवन पाकर जाग उठी है; जाग उठी है अपनी एकता और उस महान् सन्देश के प्रति श्रद्धा के रूप में जिसका उसकी प्राचीन जाति की स्वप्नदर्शी आत्मा वैदिक काल से ही चिन्तन-मनन करती आयी है और जो सन्देश उसे बाकी मानवता को थाती रूप में सौंपना है।

कोलम्बो में उनके व्याख्यान और रामेश्वरम् में उनके उपदेश हृदयग्राही थे, परन्तु अपनी महानतम शक्तियों को उन्होंने मद्रास के लिए रख छोड़ा था। मद्रास एक तरह की उद्दाम विह्वलता के साथ कई सप्ताह से उनकी बाट जोह रहा था। ....(वहाँ के) लोगों की उद्दाम आकांक्षा को उन्होंने भारत के प्रति अपना सन्देश देकर सन्तुष्ट किया। वह सन्देश मानो राम कृष्ण और शिव की भूमि के जागरण का शंखनाद था, अमर आत्मा के वीरत्व के प्रति युद्ध में मार्च करने का आह्वान था। वे, एक सेनानायक, अपने लोगों को अपनी

समरनीति सुझाते हुए एक साथ उठ खड़े होने को पुकार रहे थे।

"मेरे भारत, जागो! .... आगामी पचास वर्षों तक ..... हमारे मन से अन्य सभी व्यर्थ के देवी देवता अन्तर्हित हो जायें। हमारा राष्ट्र—यही हमारा एकमात्र ईश्वर है; सर्वत्र उसके कान हैं, वह सब कुछ आवृत्त किये हुए हैं और बाकी सभी देवता सो रहे हैं। जब उस देवता को जिसे हम अपने चारों ओर देख पाते हैं, उस विराट् की पूजा नहीं कर पाते, तो फिर हम अन्य व्यर्थ के देवताओं के पीछे क्यों पड़ें? ....हमारे चारों तरफ जो लोग हैं सर्वप्रथम उन विराट् की पूजा करो। मानव और पशु—सभी हमारे देवता हैं, और सबसे पहले हमें जिन देवताओं की पूजा करनी होगी, वे हैं हमारे स्वदेशवासी ...।"

इन तड़ित्सम शब्दों की कैसी प्रतिध्वनि हुई होगी, इसकी आप ही कल्पना करें। .... झंझावात आया और चला गया; पर अपने पीछे वह सर्वत्र आत्मशक्ति, मानव में प्रच्छन्न ब्रह्म और उसकी अनन्त सम्भावनाओं में अदम्य निष्ठा का अग्निप्रपात फैलाता गया। यहाँ मेरे मनश्चक्षुओं के समक्ष रेम्ब्राँ द्वारा उत्कीर्ण वह मूर्तिशिल्प भास रहा है, जिसमें लाजरस की कब्र पर ईसामसीह के समान प्रज्ञापुरुष तनकर खड़े हैं, उनके हाथ उठे हुए हैं और मृतक को जगाने तथा जीवन दान करने के लिए उनकी प्रभावान मुखमुद्रा से शक्ति का प्रवाह निःश्रित हो रहा है।...

क्या मृतक में प्राणसंचार हुआ? अपने सन्देश वाहक के शब्दों पर रोमांचित होकर क्या भारत ने उनकी आशा को भी पूर्ण किया? क्या उसका मुखर उत्साह कार्य में रूपायित हुआ? लगता है कि उस समय के लिए यह सम्पूर्ण अग्नि धूम्र रूप मे परिणत हो गयी थी और विवेकानन्द ने दो वर्ष बाद खेदपूर्वक कहा कि मुझे अपनी सेना के लिए अपेक्षित भारतीय युवकों की फसल प्राप्त नहीं हुई। स्वप्नों में आच्छन्न, पूर्वग्रह से ग्रस्त और अल्प उद्यम के भार को भी सह पाने में असमर्थ एक राष्ट्र की आदतों को क्षणभर में बदल पाना असम्भव था, परन्तु आचार्यदेव के कठोर आघात ने अपनी निद्रा में उसे पहली बार करवट बदलने को विवश किया। स्वप्न में डूबे भारत को पहली बार अपने ब्रह्मबोध के साथ आगे कूच करने का वीरता-पूर्ण शंखनाद सुनाई पड़ा। वह कभी इसे विस्मृत नहीं कर सका। उसी दिन से तन्द्रालु महामूर्ति का जागरण आरम्भ हुआ। विवेकानन्द के निधन के तीन वर्ष बाद ही, आगामी पीढ़ी ने, तिलक और गांधी के महान आन्दोलन के पूर्वाभास रूप में बंगाल का जो विद्रोह देखा, और आज यदि भारत ने संगठित और सामूहिक जन-आन्दोलन में निश्चित रूप से भाग लिया है, तो यह उनके मद्रास के सन्देश में निहित 'लाजरस, उठो! जागो!' के उस प्रारम्भिक आघात के कारण ही था।

शक्ति के इस सन्देश का दोहरा तात्पर्य था, जिनमें एक था राष्ट्रीय और दूसरा सार्वभौमिकता। यद्यपि अद्वैतवादी महान संन्यासी के लिए तो इसका सार्वभौमिक अर्थ ही प्रधान था। परन्तु इसके दूसरे अर्थ ने भारतीय बल को पुनर्जीवन प्रदान किया।

* *

उनके शब्द महान् संगीत हैं, बीथोवन शैली के टुकड़े हैं, हैंडेल के समवेत गान के छन्दप्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत्स्पर्श के—से आघात की सिहरन का अनुभव किये बिना मैं उनकी उस वाणी का स्पर्श नहीं कर सकता, जो तीस वर्ष की दूरी पर पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं। और जब वे ज्वलन्त शब्दों के रूप में नायक के मुख से निकले थे, तब तो न जाने कैसे आघात और आवेग पैदा हुए होंगे।

अनेक शताब्दियों से भारतवर्ष जिस ऊसर विचारधारा की चलमान बालुकाराशि में फँसा

हुआ था. उससे उसका उद्धार उसी के एक संन्यासी के हाथों हुआ; और इसके फलस्वरूप उसके नीचे छिपी हुई आध्यात्मिकता की जल राशि बड़ी-बड़ी लहरों के रूप में प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार जो प्रचण्ड शक्तियाँ उनमुक्त हुई थीं, उनसे पश्चिम को अवगत कराना आवश्यक है।

आज विश्व एक जागरणशील भारत के सम्मुखीन हुआ है। इस विराट् प्रायद्वीप के सुविस्तृत क्षेत्र में फैलकर लेटी हुई इसकी महान काया अब अपने हाथ-पांव फैला रही है, अपनी बिखरी शक्तियों को एकत्र कर रही है। विगत शताब्दियों में तीन पीढ़ियों के तूर्यवादकों ने इस पुनर्जागरण में चाहे जो भी भूमिका क्यों न निभायी हो (जनमें सर्वोच्च और सच्चे अग्रदूत राममोहन राय हैं, जो हमारे प्रणम्य हैं) परन्तु चरम तूर्यनाद तो (स्वामीजी के) कोलम्बो तथा मद्रास के व्याख्यानों के माध्यम से ही हुआ था।

और वह जादुई मूलमंत्र था एकता—प्रत्येक भारतीय नर-नारी के बीच एकता; आत्मा की समस्त शक्तियों—कल्पना और क्रिया के बीच एकता; मुक्ति, प्रेम एवं कर्म के बीच एकता; अपनी सैकड़ों भिन्न-भिन्न भाषाओं के बीच एकता; वर्तमान एव भावी पुनर्निर्माण के मूल एक ही धार्मिक केन्द्र से उत्थित होने वाले लाखों देवी देवताओं के बीच एकता और प्राच्य व पाश्चात्य के भूत एवं वर्तमान के समस्त धार्मिक विचारों के विशाल सागर के बीच एकता। आज भारत पश्चिम की उद्धत सभ्यता के प्रति निष्ठा दिखाने से इन्कार करता है, अपने निजी विचारों की रक्षा के लिए संघर्ष करता है, अपने युगों पूर्व की विरासत को उसने उसके किसी भी अंश को परित्याग न करने के संकल्प के साथ अपना लिया है, बाकी जगत् को इससे लाभ उठाने की अनुमति प्रदान की है और उसके बदले में पाश्चात्य बौद्धिकता की उपलब्धियों को स्वीकार किया है। इसी में रामकृष्ण-विवेकानन्द और राममोहन-ब्रह्मसमाज के जागरण के बीच का भेद निहित है। एक अपूर्ण और भेदभावपूर्ण सभ्यता के प्रभुत्व के दिन अब बीत चुके हैं। दो दीर्घकाय—एशिया और यूरोप पहली बार समानता के आधार पर आज आमने-सामने खड़े हैं। यदि वे विवेकवान हुए तो मिलकर कार्य करेंगे और उनके परिश्रम का फल सबको प्राप्त होगा।

यह 'बृहत्तर भारत', यह 'अभिनव भारत', जिसके अभ्युदय की बात राजनीविज्ञ और विद्वज्जन हमसे शुतुरमुर्ग की भाँति छिपाते आये हैं और जिसका विलक्षण प्रभाव अब हमारे सामने स्पष्ट हो उठा है, रामकृष्ण की आत्मा से ओत प्रोत है। परमहंस और उनके विचारों को रूपायित करने वाले वीर (विवेकानन्द)—ये युग्मनक्षत्र वर्तमान भारत को प्रभावित और प्रेरित कर रहे हैं। उनकी उष्ण कान्ति खमीर के समान क्रियाशील होकर भारतभूमि को उर्वर बना रही है। भारत के महान नेतागण—मनीषा शिरोमणि अरविन्द घोष, कवीन्द्र रवीन्द्र और महात्मा गांधी—ये सभी राजहंस और गरुड़ के युग्मनक्षत्र-आलोक में ही पल्लवित, पुष्पित और फलित हुए हैं। अरविन्द और गांधी ने यह बात सार्वजनिक तौर पर स्वीकार भी की है।

*

स्वामीजी और हम

—स्वामी निर्जरानन्द
सम्पादक "उद्बोधन" कलकत्ता
अनुवादक : डा० कल्याण शंकर भट्टाचार्य

स्वामी विवेकानन्द के शुभ आविर्भाव तिथिका ११ जनवरी, १९८८ को , १२५ वें वर्ष में पदार्पण हुआ। आज सोचने का विषय है, कि स्वामीजी के सम्बन्ध में हमने कितना सुना अथवा उनको हम कितना मानकर चल रहे हैं।

स्वामीजी का आविर्भाव हुआ पराधीन भारत वर्ष में, अंग्रेज-शासित जाति के करुण आर्त्तनाद ने विवेकानन्द के विशाल प्राण को चंचल कर डाला था। इस आर्त्तनाद ने स्वामीजी के अन्तर में ध्वनित होकर समाधिनिष्ठ स्वामीजी को समाधि सुख के आस्वादन की प्राप्ति में मग्न नहीं रहने दिया। परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द समग्र भारतवर्ष का पर्यटन करके, दरिद्र के पर्ण कुटीर से लेकर धनी के राजप्रासाद तक, सर्वस्तर के मनुष्यों की अवस्था के साथ सुपरिचित हुए। इस महान अभिज्ञता के फल-स्वरूप ही स्वामीजी वे कहा : "मैं अभी भी तुम्हारे तथाकथित धर्म के बारे में कुछ भी नहीं समझता हूँ; परन्तु मेरा हृदय अत्यन्त विशाल हो गया है"।[1] स्वामीजी ने अनुभव किया था कि उनका ईश्वर केवल उनके हृदय में ही विराजमान नहीं हैं बल्कि वे क्षुधार्त्त, पीड़ित, दलित, मूर्ख तथा पददलित मनुष्यों के हृदय में भी विराजमान हैं। उन्होंने अनुभव किया था कि उनके ईश्वर समस्त भारत-वासियों के अन्तर-अन्तर में विद्यमान हैं। तभी उन्होंने समस्त भारतवासियों को 'विराट रूपी" ईश्वर की सेवा व उपासना के लिए आह्वान करते हुए कहा था—भारतमाता विराट महामाया की ही प्रतीक एवं छायामात्र हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष किया था कि समग्र जाति चिराचरित धर्मानुष्ठान करती रहती है किन्तु वे कुम्भकर्ण की भाँति महा तमनिद्रा में अभिभूत हैं। तमोनिद्रा भंग करने के उद्देश्य से ही युगाचार्य स्वामीजी के कण्ठ से वज्रनिनाद ध्वनित हुआ था : तुम सब उठो, जागो।"[2]

"जागो वीर, मिटा दो स्वपन,
सिर पर मंडराता शमन,
भय क्या देता तुम्हें शोभन ?"[3]

"आगामी पचास साल तक हमारी गरीयसी भारतमाता ही हमारी एकमात्र आराध्य देवी हों।"[4]

"भारतमाता कमसे कम सहस्र युवकों की बलि चाहती हैं, याद रखना है—मानव चाहिए, पशु नहीं।"[5]

विगत उन्नीसवीं सदी के शेषांश में उनकी 'पान्चजन्य शंखध्वनि' तुल्य आह्वान से इस महान जाति की अनेक शताब्दियों की मोहित निद्रा भंग हो गयी एवं पिंजड़े में आबद्ध सिंह जैसे गर्जन करते हुए, पिंजर मुक्त हो जाता है उसी तरह पराधीनता की अति तीव्र व्यथा-वेदना से, बंधन-शृंखला को चूर्णविचूर्ण करके भारतवर्ष मुक्त हो गया।

राजनैतिक स्वाधीनतालाभ करना ही क्या स्वामीजी के आह्वान की अंतिम बात थी ? भविष्य के

भारतवर्ष के सम्बन्ध में स्वामीजी ने किन्तु दिव्य दर्शन करके कहा था, भविष्य में भारतवर्ष गौरव के इतने उच्चासन पर आरूढ़ होगा कि अतीत का समस्त गौरव उसके समक्ष म्लान हो जायेगा। देश की राजनैतिक मुक्ति के लिए सब को जितना स्वार्थत्याग स्वीकार करके स्वाधीनता अर्जित करना पड़ा था, उतना ही गठन मूलक कार्य में जुट कर देश की सार्विक उन्नतिसाधन करने के लिए महान व्रत के रूप में अधिकतर मूल्य देने की आवश्यकता है। प्राक-स्वाधीनता युग में सभी का एकमात्र उद्देश्य था स्वाधीनता लाभ करने के लिए सर्वशक्ति का प्रयोग करना एवं इसीलिए देखा गया अभूतपूर्व उत्साह उद्दीपना, ज्वलन्त विश्वास और अद्भुत आत्माहुति। राजनैतिक स्वाधीनता ने जाति को प्रदान किया है—जाति के सामग्रिक अभ्युदय में पूर्ण अधिकार। उपर्युक्त महासाधना के कौन अधिकारी हैं? चरित्रवान, निश्छल, सत्यपरायण, धैर्यवान, अध्यवसायी, निष्ठावान, देशप्रेमिक गण। केवल व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के उद्देश्य से प्राप्त अधिकार का उपयोग करने का नाम स्वाधीनता नहीं, स्वेच्छाचारिता है। वृहत्तर आदर्श के लिए क्षुद्रतर स्वार्थ त्याग ही स्वाधीनता लाभ का मूल उद्देश्य है।

आज हम में से अनेकों के लिए स्वाधीनता एवं स्वेच्छाचारिता में कोई भी प्रभेद नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जैसे सद्भाव व सद् प्रवृत्ति विद्यमान होती है वैसे ही असद् भाव भी प्रबल रूप से होता है। यथार्थ शिक्षा लाभ न करने से असद् भाव ही धीरे-धीरे बढ़ता हुआ देखा जाता है।

वर्त्तमान में स्वेच्छाचारिता ने अनेकों को अत्यधिक विलास—व्यसन में आसक्त कर दिया है एवं परार्थ-भावना तो सुदूर पराहत हो चली है, स्वार्थ में अन्धापन ने अनेकों को केवल मात्र इन्द्रिय परायण कर डाला है। ऐसी अवस्था में जीवन के उच्चादर्श में लक्ष्य स्थिर रख कर चलना असम्भव हो उठा है। समाज अब अनुकूल हो उठा है असत् लोगों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए, प्रतिकूल हो उठा है जो सत्य पथ पर आगे बढ़ने के संग्राम की चेष्टा कर रहे हैं, उनके लिए। जो धनी हैं उनमें से अनेक अधिकतर ऐश्वर्य के अधिकारी बने हुए हैं अन्याय के पथ से, एवं दूसरों को वंचित करके अपना भोग चरितार्थ कर रहे हैं। धनी अधिकतर धनी एवं दरिद्र अधिकतर गरीब होते जा रहे हैं।

मूल समस्या क्या है? हमारी चरित्रहीनता। तभी स्वामीजी ने कहा: "जगत को अब एकान्त प्रयोजन है—चरित्र की। जगत अब उन्हें चाहता है—जिनका जीवन प्रेमोद्दीप्त एवं स्वार्थशून्य हो। वह प्रेम वज्र के समान शक्तिशाली बना डालेगा।"[6] स्वामीजी ने कहा था: "केवल शिक्षा, शिक्षा। यूरोप के अनेक नगरों का पर्यटन कर उनके गरीबों की भी सुख-सुविधाएँ व विद्या देखकर हमारे गरीबों की बात याद करते हुए मैं अश्रुविसर्जन किया करता था। यह भेदभाव कैसे हुआ? शिक्षा—उत्तर मिला। शिक्षा के बल से आत्मविशवास; आत्मविश्वास द्वारा अन्तर्निहित ब्रह्म जागरित हो उठते हैं; और हमारे बीच वह धीरे-धीरे संकुचित हो रहे हैं!"[7]

चरित्रगठन का मूल आधार है संयम। शिक्षा एवं उच्च आदर्शों के लिए क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थादि के वर्जन करने का अभ्यास करना। इसके लिए सत् शिक्षादान ही एकमात्र उपाय है। वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार की सत्शिक्षा की कितनी व्यवस्था है? जिस शिक्षादान के लिए करोड़ों रुपये व्यय हो रहे हैं उस शिक्षा प्रणाली में चरित्र निर्माण का स्थान कितना है? स्वामीजी ने कहा था: हमारे बालकों को जिस की शिक्षा दी जा रही है, वह पूरी तरह नाकारात्मक (negative) है - स्कूल

का विद्यार्थी कुछ भी नहीं सीखता, केवल सब टूट फूट कर बिखर जाता है—फलस्वरूप, 'श्रद्धा हीनत्व' ।....तभी तो हम विनाश के इतने निकट हैं ! यहाँ उपाय है—शिक्षा का प्रचार ।"[8] स्वामीजी कहते थे : "हमारे कार्यों की यह मूल बात सदा याद रखो—'धर्म के ऊपर तनिक भी आघात न करके जनसाधारण का उन्नति-विधान । याद रखो, दरिद्रों की कुटिया में ही हमारा जातीय जीवन स्पन्दित हो रहा है ।"[9] वे कहते थे :" महान बनने के लिए किसी भी जाति या व्यक्ति के लिए प्रयोजन हैं : (१) साधुता की शक्ति में प्रगाढ़ विश्वास (२) हिंसा व सन्देह भाव का सम्पूर्ण त्याग (३) जो सच्चे बनना चाहते हैं अथवा सत्कार्य के लिये सचेष्ट हों, उनको सहायता करना ।"[10]

स्वामीजी ने आह्वान करते हुए कहा, "आओ, मनुष्य बनो । अपने संकीर्ण दायरे से निकलकर बाहर आकर देखो, सभी जातियाँ कैसे उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं । तुम क्या मनुष्य को प्यार करते हो ? तुम सब क्या देश को प्रेम करते हो ? तब आओ, हम सब अच्छा बनने के लिए—उन्नत होने के लिए भरसक प्रयत्न करें ।"[11]

दृढ़ आत्मविश्वास, व्यक्तिगत एवं जातीय चारित्रिक बल अर्जन कर पाने से ही समस्त कल्याणमूलक कार्य सफल हो सकेंगे । चारित्रिक बल के अभाव से ही सब तरह की प्रचेष्टाएं ताश के बने मकान के सदृश गिर जाती हैं ।

आज स्वामी विवेकानन्द ही हमारे लिए एकमात्र उपाय एवं मार्ग हैं । हम क्या उनके द्वारा दर्शाये हुए मार्ग पर नहीं चलेंगे ? हम क्या उनकी पुकार को नहीं सुनेंगे ?

['उद्‌बोधन' पत्रिका की जनवरी १९८८ संख्या पृ० ८२ में प्रकाशित लेख से साभार अनूदित]

---

(१) युगनायक विवेकानन्द—स्वामी गम्भीरानन्द १ खण्ड, पृ. ४१८
(२) स्वामी विवेकानन्द की वाणी व रचना, ७म खण्ड, पृ. २५१
(३) स्वामी विवेकानन्द की वाणी व रचना षष्ठ खण्ड, पृ. २७१
(४) ,, उपरोक्त ,, ,, पंचम खंड, पृ. १९८
(५) ,, उपरोक्त ,, ,, षष्ठ खंड, पृ. ३५८
(६) वाणी ओ रचना, ,, ,, सप्तम खण्ड पृ० २५१
(७) वाणी व रचना, ,, ,, सप्तम खण्ड, पृ० ३२६
(८) ,, ,, ,, ,, पृ० ३२७
(९) ,, ,, ,, ,, पृ० ३९२
(१०) ,, ,, ,, ,, पृ० ३९६
(११) स्वामी विवेकानन्द की वाणी व रचना सप्तम खण्ड, पृ० ३५९

स्वामी विवेकानन्द के प्रति

—श्री यश मालवीय
इलाहाबाद

संस्कृति के पोषक उन्नायक नमन तुम्हें सौ बार।
भारत माँ की गोद लिले तुम
महके फूल सरीखे
तुम दुनिया में गये जहाँ भी
अलग-अलग ही दीखे
तुमने देश धर्म की खातिर लिया जहाँ अवतार।
मानवता के मुकुट बने तुम
सूरज बन कर चमके
बोल तुम्हारे सुनकर बदले
तेवर गोली-बम के
नाव भँवर में आयी जब भी तुम्हीं बने पतवार।
परमहंस श्रीरामकृष्ण की
सघन स्नेह छाया में
स्वयं देव उतरे थे भू पर
मानव की काया में
तुम वसंत के सुमन बन गये जब आया पतझार।
तुम नरेन्द्र से हुए विवेकानन्द
इसी धरती पर
तुमने भारत की वेदी पर
सब कुछ किया निछावर
तुमने ठंडे प्राणों में भी धधकाया अंगार
हम भारतवासी कृतज्ञ हैं
सुनकर गौरव गाथा
बरबस ही श्रद्धा से अपना
झुक जाता है माथा
तुम समुद्र बनकर लहरे थे मन में लेकर ज्वार।
शुरू ओम् से हुई तुम्हारी
जीवन यात्रा मंगल
पहुँच गयी ओंकार मार्ग पर
ज्यों गंगा की कल-कल
तृषित हृदय के लिए बने तुम सावन की बौछार।

हिन्दू शिक्षण-दर्शन

—स्वामी हर्षानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद
अनुवादक—प्रो० एस० रामचन्द्रन्, धारवार

अंधानुकरण गलत है :

अपनी शिक्षा-प्रणाली की अनगिनत कमियाँ हैं। उनमें पाश्चात्यों का अनुकरण सबसे बड़ी कमजोरी है। यह भी आंख मूंद कर अनुकरण या आंतरिक मर्म जाने बिना बाहरी नकल है। शिक्षकों को प्रशिक्षित करनेवाली संस्थाएँ और उनका पथ-प्रदर्शन करनेवाले विश्वविद्यालय भी इसका अपवाद नहीं हैं। क्या अपने देश के वातावरण के अनुकूल अपने लोगों से प्रतिपादित अपना ही शिक्षण-दर्शन नहीं है? बात बात में जॉन डूयूयी, आल्फ्रेड नार्त व्हाईटहेड, किल् प्याट्रिक आदि की ही शरण में जाएँ? यह सरासर गुलामी नहीं है तो क्या है!

प्राचीन शिक्षा प्रणाली :

प्राचीन युग में प्रकांड पांडित्य और सर्वोत्तम आचरण के आदर्श बने ऐसे कई महानुभाव थे जो कुलपति के नाते गुरुकुलों का संचालन करते थे। वे लेखन के अभाव के युग में विपुल ज्ञान-संपदा को सूत्र रूप में प्रस्तुत करते थे। उन्हें कंठस्थ कराते थे। व्याख्या औरप्रश्नोत्तर-विधान की चर्चाओं के द्वारा विवरण सुलभ बनाते हुए शिष्यों को वे शिक्षा प्रदान करते थे। इसकी अमिट छाप उनके मन में अवश्य बनी रहती थी। आज भी अनेक शास्त्र-ग्रंथों के आकरग्रंथ सूत्र रूप में ही सुरक्षित हैं। लेखन का आविष्कार होने के बाद उन शास्त्र-प्रणेताओं के संप्रदाय को मानने वाले आचार्य उन-उन आकरग्रंथों के भाष्य रचने व टीकाएँ लिखने लगे। यही कारण है कि हम आज उन शास्त्रों के अर्थ लगाने में समर्थ हुए हैं।

आदर्श आचार्य पुरुष :

तैत्तिरीयोपनिषत् के प्रथम अध्याय (शिक्षावल्ली) के अंत में वेदाध्ययन पूरा करके अपने घर लौटते, गृहस्थ बनने को इच्छुक, छात्र को स्नातक कहा जाता था। आचार्य उस स्नातक को उपदेश देता था। उसमें यह वाक्य बड़ा अर्थपूर्ण है—

यानि अस्माकं सुचरितानि तानि सेवितव्यानि; नो इतराणि।

(हमारे भले आचरणों को ही अपनाना,बुरे आचरणों को नहीं।)

इसी तरह वेदाध्ययन के आरंभ में एक शांतिमंत्र है। वह इस प्रकार है —

'तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषामहै'

(हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी हो, हम दोनों में द्वेष न हो।)

विद्याभूषण होते हुए भी विनयी, अध्यापक होने के साथ-साथ अध्येता, अध्यापन के क्षणों में मतभेद होने पर भी उसे द्वेष में परिणत न होने देना आदि लक्षणों से संपन्न ये महानुभाव क्या अपनी हिन्दू संस्कृति के उच्च आदर्शों के प्रतिपादक अध्यापक नहीं हैं?

पराशर महर्षि :

ऐसे आदर्श आचार्य पुरुषों में पराशर महर्षि की गणना होती है। आप ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी के पोते तथा कृष्णद्वैपायन व्यासजी के पिता थे। गोत्रप्रवर्तक ऋषियों में आप का नाम है। आप ऋग्वेद के मंत्रद्रष्टा हैं। प्रमुख स्मृतिकार हैं।

पराशर सूत्र :

आपका बनाया प्रसिद्ध सूत्र है– 'सा विद्या या

विमुक्तये ।' (जिससे विमुक्ति प्राप्त हो, वही विद्या है ।) पराशर महर्षि की सूत्र शैली का यह वाक्य हिन्दू शिक्षा-प्रणाली की आधारशिला है । इसी में शिक्षण का सारा दर्शन निहित माना जाता सकता है ।

सूत्र-विमर्श-विद्या :

यहाँ मुख्य रूप से हमें दो शब्दों पर विचार करना है—विद्या और विमुक्ति । विद्या है बोध, जानकारी, ज्ञान, अनुभव आदि। मुंडकोपनिषत् (१. १. ४) में विद्या के परा-अपरा दो भेद मिलते हैं। परमात्मा के साक्षात्कार में सहायता पहुँचानेवाली विद्या परा विद्या है । बाकी अपरा विद्या है । इसे अविद्या कहें तो कोई हानि नहीं। ईशावास्योपनिषत् (११) में कहा गया है— **'अविद्यया मृत्यं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते** (अविद्या से मृत्यु पारकरके विद्या से अमृत प्राप्त किया जाता है) । भूख, प्यास ही मृत्यु हैं— **अशनाया हि मृत्युः** (बृहदारण्य-कोपनिषत् (१. २. १) इसका आशय है कि लौकिक ज्ञान से इनका हल ढूँढ़ते हुए अध्यात्म-ज्ञान से मोक्ष प्राप्त करो । संसार में जीवन की सार्थकता के लिए ये दोनों विद्याएँ अनिवार्य हैं ।

सूत्र-विमर्श-विमुक्ति :

विमुक्ति शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है । जन्म-मृत्यु के चक्कर में डालनेवाले इस संसार से छुटकारा पाना ही विमुक्ति है । फिर भी इनके बीच पड़नेवाली मुक्ति या स्वतंत्रता भुलायी नहीं जा सकती । भगवान श्री रामकृष्ण परमहंसदेव ने कहा है कि भूखे व्यक्ति को वेदांत का पाठ पढ़ाना घोर पाप है । गरीबी से खुद को बचाते हुए,दूसरों पर आश्रित रहे बिना, अपनी रोटी आप कमावे, यह स्व-तंत्रता भी विमुक्ति का ही अंग है । विद्या से यह शक्ति मिलनी चाहिए । साथ ही स्वास्थ्य के नियमों की जानकारी, समाज में औरों से मिलने-जुलने लायक आचार-व्यवहार आदि का भी बोध होना चाहिए । यह आवश्यक है । पर यही काफी नहीं है । इससे विमुक्ति या स्वतंत्रता का पूरा आशय खुलता नहीं ।

समाज में औरों के संग जीवन यापन करते समय हमें अपना जीवनस्तर बनाये रखना आवश्यक है ; जाति, लिंग, वर्ण, धन, अधिकार, संप्रदाय आदि इसमें कभी बाधक न बने । आर्थात् दूसरों से कोई भेदभाव न बरतें । और लोग किसी भी कारण से भेदभाव करें तो उससे हततेज न होनेवाले मनोबल को विद्या से पोषण मिले । मानव को मानव के नाते पहचानने और उसके साथ व्यवहार करने की कला विद्या से मिले । यह विमुक्ति का दूसरा पहलू है ।

स्वतंत्रता की यह दूसरी सीढ़ी है । पर यही आखिरी नहीं है । जीवन में आगे बढ़ने, समाज में ससम्मान जीवन निभाने केलिए एक और स्वतंत्रता आवश्यक है । वही वाणी की, विचार करने की, स्वतंत्रता है । इनके बिना समाज में रहना भी व्यर्थ सा हो जाता है । व्यक्तित्वहीन व्यक्ति किस काम का ? दूसरों की हाँ में हाँ मिलाना और उनके जाल में फँसते जाना दास्य-बुद्धि का लक्षण है, बुद्धि की स्वतंत्रता का संकेत नहीं । श्रीकृष्ण, बुद्धदेव, आदिशंकराचार्य जैसे मेधावी महापुरुषों ने भी कहा था —**'विमृश्यैतत् अशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु,** (भली भाँति सोच समझकर परख लो, फिर अपनी इच्छा के अनुरूप आचरण करो ।) उन्होंने कभी अपने विचारों को दूसरों पर नहीं थोपा । विद्या से ही बुद्धि स्वतंत्र होती है । यह विमुक्ति का तीसरा आयाम है ।

विमुक्ति की पराकाष्ठा—आध्यात्मिक स्वतंत्रता

ऐसी बौद्धिक, वैचारिक, स्वतंत्रता के अधिकारी कितने हैं ? अपने को पहुँचे हुए ज्ञानी, स्पष्टवक्ता, सत्य-वादी निर्भीक, माननेवाले भी, ऐसा दंभ भरनेवाले भी, राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि के शिकार नहीं है ? इनसे कलुषित मन कहाँ तक स्वतंत्र रह सकता है ? मतलब यह कि राग-द्वेष के द्वंद्व से, काम क्रोध आदि अरि षड्-वर्ग से जो परे हैं, वे ही वास्तव में स्वतंत्र हैं, विमुक्त हैं । विद्या से ही ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त होगी । अतः आध्या-त्मिक स्वतंत्रता ही वास्तव में विमुक्ति है । यही विमुक्ति

की पराकाष्ठा है, चरम उत्कर्ष है। ऐसी विमुक्ति जिससे प्राप्त हो, वही परा विद्या है।

उपसंहार :

आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक,नैतिक एवं आध्यात्मिक स्वतंत्रता जिससे हमें मिले, वही पराशर महर्षिजी की दृष्टि में असली विद्या है, सच्चा शिक्षण है। बाकी सब विद्या के केवल आभास हैं।

ऐसी शिक्षा-प्रणाली में 'अविद्या' तथा 'विद्या' अर्थात् अन्नविद्या एव 'ब्रह्मविद्या' को समान स्थान होना चाहिए। तभी सर्वतोमुखी उन्नति संभव होगी। स्वामी विवेकानन्दजी ने इसी को शीलसंवर्धिनी शिक्षा कहा। ब्रह्मविद्या-सौरभ बिना अन्नविद्या अथवा शीलरहित लौकिक ज्ञान संख्याहीन शून्य के समान है।

इस शिक्षा-प्रणाली में शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास के अतिरिक्त आत्मिक उत्कर्ष के लिए अनिवार्य प्रार्थना, ध्यान, जप, आत्मज्ञान आदि को समुचित स्थान मिलना चाहिए। इसके लिए सुयोग्य शिक्षकों को नियुक्त करना चाहिए। उन्हें कालोचित प्रशिक्षण मिलना चाहिए। समर्थ शिक्षकों के हाथों सुशील छात्र तैयार हों तो इसमें संदेह नहीं कि अपने समाज का और देश का मस्तक संसार में सबसे ऊँचा उठेगा और मानवता का कल्याण होगा।

★

वितर्क-बाधाएँ एवं प्रतिपक्ष-भावना

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

जैसा कि हम लोग जानते हैं, हम स्वयं ही अपनी सबसे बड़ी बाधा हैं। गीता के अनुसार आत्मा ही आत्मा की बन्धु एवं आत्मा ही आत्मा की शत्रु होती है "आत्मैवात्मना बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥" भ्रान्त-धारणाओं से युक्त असंयत मन ही हमारे आध्यात्मिक जीवन का सबसे बड़ा रोड़ा है। जब हम यम-नियमादि के अनुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं तो विपरीत मान्यताओं के रूप में विद्यमान ये बाधाएँ हमारी साधना में बिघ्न पैदा करती हैं, तथा हमें पूर्ण मनोयोग से यम-नियमादि का पालन नहीं करने देतीं। पतंजलि ने इन्हें वितर्क-बाधाओं की संज्ञा दी है। वितर्क का शाब्दिक अर्थ है विपरीत तर्क या विचार —अर्थात् यमनियमादि के विपरीत भावों में आस्था, उपादेय बुद्धि। इन्हें दूर करने के लिए वे प्रतिपक्ष भावना का उपाय बताते हैं।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥२:३३

वितर्का हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिता लोभ-मोह पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष भावनम् ॥२।३४

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, इन पांच यमों एवं शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान, इन पाँच नियमों के विपरीत, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह, अशौच, असन्तोष, अतितिक्षा, वृथा वचन एवं पाठन, एवं हीन चरित्र पुरुषों की भावना या अनीश्वरगुण की भावना, ये दस वितर्क कहलाते हैं। ये स्वयं कृत, दूसरों के द्वारा करवाये गये, तथा किये हुए होने पर अनुमोदित होते हैं। ये लोभ, मोह या क्रोध द्वारा प्रेरित-आचरित होते हैं। इनकी मृदु, मध्य अथवा अधिक, ये तीन मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार ये सताईस प्रकार के होते हैं। अगर मन, वाणी और कर्म के भेदों को भी मिला लिया जाये तो ये इक्यासी प्रकार के होंगे।

फिर नियम, विकल्प और समुच्चय भेद से इनके अनन्त प्रकार हो सकते हैं।

असंख्य पूर्व जन्मों के हिंसादि के संस्कारों के कारण ये वितर्क आत्मा के धर्म न होते हुए भी हमारे लिए स्वाभाविक हो गये हैं, तथा हम इन्हें अपनी स्वार्थ-सिद्धि के उपाय समझने लगे हैं। कुछ प्रकार की हिंसा-आदि तो समाज द्वारा स्वीकृत हो उसका अंग बन गयी हैं। युद्ध से शत्रु वध, राजन्यवर्ग द्वारा हिंस्र पशुओं एवं आततायिओं का वध, दंशनकारी अथवा रोग फैलाने वाले मच्छर आदि का नाश आदि मानव समाज के लिए मानो अनिवार्य हो गये हैं—उन्होंने धर्म का रूप ले लिया है। कुछ लोग स्वयं इन कार्यों को करते हैं, अन्य दूसरे करवाते हैं तथा तीसरे प्रकार के व्यक्ति इन कार्यों का अनुमोदन करते हैं। लोभ पूर्वक अर्थात् मांस-चर्म आदि के लिए हिंसा करना; क्रोध पूर्वक जैसे "उसने मेरा अपकार किया है, अतः यह हिंसा योग्य है; और मोह पूर्वक अर्थात् "पशुवध से धर्माचरण होगा।'—इस प्रकार की विभाग प्रणाली, असत्य, चोरी आदि प्रत्येक वितर्क के विषय में लगायी जाती है। इस प्रकार के असंख्य वितर्क-प्रेरित विचार साधक के मन में उठते रहते हैं।

किसी देश, काल, अथवा पात्र विशेष के सन्दर्भ में इनमें से कुछ धर्माचरण समझे जाकर अनुमोदित हो सकते हैं, लेकिन उच्चतर साधक के लिए, एवं यम-नियमादि के सम्यक् अनुष्ठान के लिए इनका संपूर्ण त्याग अनिवार्य है। स्वयं पतंजलि कहते हैं कि जाति, देश काल और समय से अनवच्छिन्न होने पर ही पंच यम, पंच-महाव्रतों की संज्ञा प्राप्त करते हैं। उनका सभी अवस्थाओं में, सब समय पालन करना उच्चारोहणाभिलाषी साधक के लिए अनिवार्य है। इस प्रयास में जब वितर्क बाधाएँ उपस्थित हों तो साधक को प्रतिपक्ष भावना करनी चाहिए।

हिंसा चौर्य आदि के अशुभ परिणामों का चिन्तन करना प्रतिपक्ष भावनम् कहलाता है। ये हिंसादि अनन्त दुख और अनन्त अज्ञान के कारण हैं। ऐसा सोचना चाहिए। एक उदाहरण से इसे समझने का प्रयत्न करें। हिंसक व्यक्ति पहले वध्य प्राणी को बांधकर उसके वीर्य का हनन करता है। तदनन्तर अस्त्राघात से उसे कष्ट पहुँचाता है, और अन्त में उसके प्राण हर लेता है।

जो किया है उसका फल भोगना ही होगा, कर्म-सिद्धान्त के इस अमोघ सत्य के परिणाम स्वरूप इन तीनों प्रक्रियाओं के फलस्वरूप हिंसक की देह, इन्द्रिय आदि वीर्यहीन, तेज हीन हो जाते हैं। दुःख प्रदान करने के कारण उसे नरक-तिर्यक प्रेतादि योनियों में दुःख भोगना पड़ता है। प्राण का विनाश करने के कारण हिंसक व्यक्ति जीवन-नाशकरक मोहमय रुग्ण अवस्था आदि में रह कर मरने की इच्छा होते हुए भी मर नहीं पाता, क्यों कि कुकर्म का फल तो उसे भोगना ही पड़ेगा। अगर प्रबल पुण्य के प्रताप से कुकर्म का फल कट भी जाये, तो भी पुण्य से प्राप्त सुख मिलने पर भी वह अल्पायु होता है। इस प्रकार का चिन्तन प्रतिपक्ष भावना कहलाता है। इस युक्ति से चोरी आदि दुष्कर्मों के परिणामों का चिन्तन कर उनसे मन को हटाया जा सकता है, तथा यम-नियमों के पालन में निर्बिघ्न रूप से लगाया जा सकता है। पुराण-कथाओं में वर्णित पाप के फल-स्वरूप नरकादि भोग भी प्रकारान्तर से प्रतिपक्ष भावनम् ही हैं।

त्यागी अथवा संन्यासी साधक एक दूसरे प्रकार से भी प्रतिपक्ष भावना कर सकता है। यथा—"घोर संसार ज्वाला से बचने के लिए मैंने सर्वभूतों को अभय देकर योगधर्म की शरण ली है। मैं वितर्क समूहों को त्याग कर उन्हीं का पुनः अंगीकार करने जा रहा हूँ। ऐसा करके तो मैं उस कुत्ते के समान हो जाऊँगा जो उगले गये अन्न को पुनः चाट जाता है। यह मुझे शोभा नहीं देता। धिक्कार है मुझे।"

मैत्र्यादि भावना चतुष्टय—

बहिर्जगत् के साथ संपर्क होने पर हमारे मन में हो रही प्रतिक्रियाएँ यदि स्वस्थ न हों तो वे आध्यात्मिक

जीवन की बाधओं का रूप ले सकती हैं। इन्हें दूर कर एक स्वस्थ साधनोचित मनः स्थिति के निर्माण के लिए मनीषियों ने एक सर्वभौम नियम बनाया है, जो बौद्ध परिभाषा में "ब्रह्मविहार" कहा जाता है, तथा जिसे पतंजलि ने निम्न श्लोक में लिपिबद्ध किया है :

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातः चित्तप्रसादनम् ॥१:३३.

अर्थात् सुखी, दुःखी, पुण्यवान तथा अपुण्यवान प्राणियों में यथाक्रम से मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा की भावना करने पर चित्त प्रसन्न होता है।

सामान्यतः जिसके सुख में हमारा कोई स्वार्थ नहीं होता या जिसके सुख से हमारे स्वार्थ का व्याघात होता है, उसको सुखी देखने या उसका चिन्तन करने से साधारण चित्त प्रायः ईर्ष्यालु होते हैं। उसी प्रकार शत्रु अथवा प्रतिद्वन्द्वी आदि को दुःखी देखने पर, उनपर विपत्ति पड़ने पर निष्ठुर हर्ष उमड़ पड़ता है। जो हमारे मतानुयायी नहीं हैं, किन्तु पुण्यकर्मा हैं; एक दृष्टि से सत्कर्मों के अनुष्ठान में हमारे प्रतिस्पर्धी हैं, ऐसे व्यक्तियों की प्रतिष्ठा आदि लोग देख नहीं पाते। उसे देखने अथवा चिन्तन करने पर असूया और अमुदिता के भाव मन में उठते हैं। और जो पापी और दुराचारी हैं उनके प्रति अमर्ष या क्रुद्ध पिशुन भाव उठते हैं। ये ईर्ष्या, निष्ठुर-हर्ष, अमुदिता, तथा क्रुद्ध-पिशुन भाव मनुष्य को मथित करते रहते हैं, तथा मानव मन को विक्षिप्त कर समाहित नहीं होने देते। अतः मैत्री आदि भावनाओं द्वारा चित्त को प्रसन्न करने एवं राजस-मल हीन कर लेने पर वह एकाग्र एवं स्थिर हो पाता है।

मित्र के सुखी होने पर जिस प्रकार का सुख होता है, पहले उस प्रकार के सुख का स्मरण करना चाहिए तदनन्तर जिन व्यक्तियों के सुखी होने पर ईर्ष्यादि होते हैं उनके सुखी होने पर "मैं मित्र के सुखी होने जैसा सुखी हूँ," ऐसी भावना करनी चाहिए। उनके दुखी होने पर मित्र एवं प्रियजनों के दुःखी होने से जो करुणा के भाव होते हैं, उनकी भावना करनी चाहिए। दुष्ट एवं अपुण्यात्मओं के प्रति उदासीन रहना ही साधक के लिए श्रेयस्कर है। उनको दंड देना अथवा सन्मार्ग में लाने का कार्य शासन अथवा समाज-सुधारकों पर छोड़कर स्वयं उनसे अलग तटस्थ बुद्धि रखना साधक के लिए लाभकर है। उदासीन रहना कोई भावना नहीं है, भावना का अभाव मात्र है। फिर भी इसे यहाँ सुविधा के लिए अन्य तीन भावनाओं के साथ ले लिया गया है।

जैनधर्म की द्वादश भावनाएँ —

यहाँ वैराग्योद्दीपक एवं आत्महितैषी विषयों को सुदृढ़ बनाने के लिए जैन परम्परा में प्रचलित एवं समाहृत बारह भावनाओं का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा।

(१) **अनित्य भावना** – शरीर, धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवार आदि सब विनाशशील, नश्वर एवं अनित्य हैं, केवल आत्मा ही नित्य और अविनाशी हैं, ऐसा चिन्तन करना।

(२) **अशरण भावना**—संसार में मृत्यु के समय कोई भी शरण नहीं दे सकता, कोई सहायक नहीं होता। घोर दुरारोग्य व्याधि का कष्ट भी स्वयं झेलना पड़ता है, परिवार, आत्मीय स्वजन होते हुए भी अन्ततः केवल एक शुभ धर्म ही मानव की एकमात्र शरण, एकमात्र आश्रय है।

(३) **संसार भावना**—संसार एक जंजीर, कारागार के समान है, वह एक धधकते अग्निकुण्ड के समान है। इस तरह संसार के दुःखदायी स्वरूप का चिन्तन कर संसार-चक्र से मुक्त होने की अभिलाषा करना।

(४) **एकत्व भावना**—यह आत्मा अकेली आयी है, अकेली ही संसार से जायेगी अकेली ही अपने कर्मों को भोगेगी। परिवार-परिजनादि केवल दो दिनों के लिए हैं। उन्हें त्याग कर अपनी आत्मा के एकत्व का चिन्तन करना। एकान्त में विचरण करना ही संघर्षों का समाधान है।

(५) **अन्यत्व भावना**—संसार में कोई किसी का नहीं है। यह शरीर मेरा नहीं है, यह रूप, कान्ति, स्त्री, पुत्र, भाई, बहन, दास, स्नेही, सम्बन्धी, कुल, गोत्र, धन संपद मेरे नहीं है, ऐसा चिन्तन करना।

(६) **अशुचि भावना**—यह शरीर अपवित्र है, मल मूत्र की खान है, रोग और जरा का स्थान है। आत्मा इस अशुचि शरीर से विलक्षण नित्यशुद्ध है ऐसा चिन्तन करना।

(७) **आश्रव भावना**—जीव में बन्धनकारी अशुभ कर्म संस्कारों के प्रवेश को आश्रव कहते हैं। राग, द्वेष, अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ आदि आश्रव के कारण हैं, तथा संसार चक्र में अनन्त काल तक भ्रमण कराते हैं, ऐसा चिन्तन करना।

(८) **संवर भावना** नये कर्म बंधन नहीं बाधना, संवर कहलाता है। ध्यान, शुभ आचरण आदि द्वारा जीव नये कर्म बंधन मोल नहीं लेता। संवर के उपायों का चिन्तन संवर भावना कहलाता है।

(९) **निर्जरा भावना** - कर्म समूह का क्रमशः क्षय होना निर्जरा कहलाता है। तप के द्वारा निर्जरा होती है। अतः निर्जरा के उपायों का चिन्तन करना निर्जरा भावना के अन्तर्गत आता है।

(१०) **लोक स्वरूप भावना**—स्वर्ग-नरकादि चतुर्दश लोकों के स्वरूप का चिन्तन, तथा उनमें किन-किन कारणों से जाया जाता है, तथा क्या-क्या भोग होते हैं—इन बातों का चिन्तन।

(११) **बोधि-दुर्लभ भावना**—सम्यक् ज्ञान, आत्म-ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। बोध के अमूल्यत्व एवं दुर्लभत्व का चिन्तन।

(१२) **धर्म दुर्लभ भावना** मनुष्य जन्म, धर्म के उपदेशक व ज्ञानी गुरु, एवं उनके श्रीमुख से धर्म का उपदेश प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा चिन्तन करना।

जैन शास्त्रों में इन बारह भावनाओं को समझाने के लिए प्रत्येक भावना की उदाहरण स्वरूप एक-एक सुन्दर कथा पायी जाती है। इनमें किस प्रकार एक-एक भावना विशेष का आश्रय ले कर एक-एक व्यक्ति वैराग्य-वान होकर संसारत्याग कर मोक्ष के अधिकारी हुए अथवा संसार के स्वरूप को न समझने के कारण कष्ट भोगते रहे इसका अत्यन्त रोचक वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ उन सभी गाथाओं का वर्णन संभव नहीं है। जिज्ञासु पाठक स्वयं उनका अध्ययन करें।

रामकृष्ण–विवेकानन्द-भावधारा का वैशिष्ट्य

पं० रामकिंकर उपाध्याय

पण्डितजी के २ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संकलन। कीमत १)

डाकखर्च अलग।

विवेक ज्योति कार्यालय, विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर (म० प्र०)

महान सन्त कमलाकान्त

– डा० निर्मल कुमार मिश्र

भारत वर्ष में आदिकाल से संत महात्माओं को अपनी विशिष्ट परम्पार रही है। प्रत्येक काल-खंड में इस प्रकार की अन्य आत्माओं ने जन सामान्य का पथ-प्रदर्शन किया है। समाज में आयी कुरीतियों को दूर करने में अपना योगदान किया है। आध्यात्मिक उन्नयन के लिए सतत् परिश्रम एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन के द्वारा मार्ग निर्धारित किया है। दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से परित्राण हेतु धार्मिक जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया है। उन्हीं संतों की परम्परा में कमला-कान्त भी हुए हैं।

महान संत कमलाकान्त का जन्म बर्दमान जिले के आम्बिका कालना नामक गांव में विक्रम संवत १८३० में हुआ था। उनके पिता भी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने बचपन से कमलाकान्त को आध्यात्मिक शिक्षा दी। युवा अवस्था में पदार्पण करते ही कमलाकांत की आध्यात्मिक शक्ति से लोग चमत्कृत होने लगे। वे सरल हृदय के अभिमानशून्य माँ काली के एकनिष्ठ उपासक संत थे।

साथ ही वे आशुकवि भी थे। जब भी कोई व्यक्ति उनसे कोई पद सुनाने का अनुरोध करता, तत्क्षण वे काव्यशास्त्र सम्मत कोई भी माँ काली संबंधी पद रचकर सुना दिया करते थे। उनकी इस शक्ति की प्रशंसा धीरे-धीरे उस समय के बर्दमान नरेश स्व. महाराज तेजचन्द्र बहादुर के कानों में पहुँची। उन्होंने कमलाकान्त को पद सुनाने के लिए सादर आमंत्रित किया। उनके अनुरोध पर दरबार में जाकर कमलाकान्त ने उन्हें अपने अनेक सुन्दर पद सुनाये। उनके पदों को सुनकर महाराज चमत्कृत हो उठे। उन्होंने उन्हें अपने राजसभापति के पद पर आसोन किया। आगे चलकर राजा ने उनकी माँ भगवती के प्रति अटूट श्रद्धा भक्ति को देख, अपना गुरु बना लिया। महाराज ने भक्त कमलाकान्त के लिए कोटाल हाट नामक गांव में एक भव्य भवन का निर्माण करवाया। वहीं रहकर कमलाकांत अपनी साधना करने लगे। इसके साथ ही महाराज ने उनके खर्च हेतु मासिक वृति भी निर्धारित कर दी। जो उन्हें प्रति मास मिला करती थी।

आगे चलकर उनके निवास स्थान पर प्रति वर्ष महाराज की ओर से भव्य कालीपूजा का आयोजन होने लगा। उक्त अवधि में महाराज की ओर से दीन-दुखियों को खिलाया-पिलाया जाता था। साथ ही काफी धनराशि दान-पुण्य के कार्य में व्यय की जाती थी। उस पूजा में महाराजा के मित्र-शत्रु, गरीब अमीर, आस्तिक-नास्तिक यानी समाज के हर वर्ग के लोग बिना किसी भेदभाव के माँ काली के दर्शनार्थ आया करते थे। उन सभी का भाव भरे हृदय से महाराज स्वागत-सत्कार किया करते। वे सभी लोग संत कमलाकन्त के सुमधुर स्वर में उनके द्वारा रचे गये भक्ति के पद सुनकर भाव विभोर हो जाते थे।

सामान्यत: कामिनी-कंचन को साधन मार्ग का परम बाधक माना जाता है। किन्तु कमलाकांत की दृष्टि में ऐसी बात न थी। एक बार किसी

व्यक्ति ने कमलाकान्त को स्त्री के साथ रहने की ओर इंगित कर व्यंगात्मक स्वर में पूछा—आप कामिनी-कंचन में अनुरक्त किस प्रकार साधना कर पाते होंगे ? इसके उत्तर में शांतिपूर्वक कमलाकान्त बोले—रमणी-हृदय सरलता, कोमलता, धर्मभीरुता आदि अनेक सद्गुणों से पूर्ण होता है। स्त्री जाति सदा संसार के मंगलसाधन में रत रहती है। वह स्निग्ध, प्रेममय और कमनीय गुणों से सुशोभित होती है। इस विश्व में स्त्री शक्ति-स्वरूपा है, वही पुरुष की उग्र और कठोर प्रकृति को संयमित करती है। शास्त्रों में कहा गया है—"**स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु**" अर्थात् साध्वी स्त्री उसी महा शक्ति स्वरूपा जगदम्बा के अंश से प्रादुर्भूत हुई है। अत: सती-साध्वी स्त्री संसार में साधन और भजन के पथ के लिए सहाय-स्वरूपिणी, अनुकूल्य-रूपिणी है, वह कभी विघ्नकारिणी नहीं है। इस प्रकार की साधना में सहायिका अर्धांगिनी कभी भी "कामिनी-कंचन" वाली "कामिनी" नहीं हो सकती। वह "कामिनी" तो इससे भिन्न है। वास्तव में जो साधक अपनी सहधर्मिणी को इस रूप में देखता हो, उसके लिए वह भला कैसे बाधक हो सकती है ?

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कमलाकांत संसार के मोह-जाल में फंसे हुए थे। वह वास्तव में एक सच्चे साधक थे। वह सर्वदा मायाममता के एकदम पार विवेक-स्रोत में गोते लगाया करते थे। कहते हैं, जिस समय उनकी पत्नी का देहावासन हुआ, उस समय वह तनिक भी दुखी और शोक-संतप्त नहीं थे। पत्नी को मुखाग्नि देते समय वे माँ भवानी के भजन गा रहे थे। वे समस्त घटनाचक्र को माँ भवानी की इच्छा मानकर शिरोधार्य किया करते थे। माँ के प्रति उनकी अनन्य भक्ति एवं समर्पण उन्हें समस्त शोक-दुख से अलग रखते थे।

एक समय की बात है कि रात के समय कमलाकांत अकेले एक सुनसान मैदान से होकर गुजर रहे थे। वहाँ पर कुछ डाकुओं ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। किन्तु सच्चे भक्त के पास भय कहाँ ? वे निर्भीक होकर आनन्दमय चित्त से नाचते हुए भगवती की प्रार्थना करने लगे। उनकी निर्भीकता एवं भक्ति देखकर डाकुओं का हृदय परिवर्तन होने लगा। वे सभी भाव-विभोर होकर नाचने-गाने लगे। उनका वैरभाव छू-मन्तर हो गया। वे सभी श्रद्धा-भक्ति के साथ उनके पैरों पर गिर पड़े और उनसे क्षमा याचना करने लगे।

कमलाकान्त माँ काली के अन्य भक्त थे। मरते दम तक उन्होंने किसी दूसरे देवता की पूजा करने या तीर्थाटन करने की इच्छा न की। जिन दिनों वे मृत्यु शय्या पर पड़े थे, उन दिनों उनके सपीप महाराज तेजचन्द्र भी उपस्थित थे। महाराज अपने गुरुदेव को अन्तिम समय पावन गंगातट पर ले जाने की तैयारी करने लगे। किन्तु कमलाकांत ने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इस पद को गाते हुए इहलीला समाप्त की।

"कि गराज कैन गंगातीरे जाबो।
आमि काली मायेर छेले हये विमातार कि
शरण लेबो।

अर्थात् क्या मतलब है, क्यों मैं गंगा किनारे जाऊँ ? मैं काली माता का पुत्र होकर विमाता की शरण भला क्यों लूँ ?

संत कममाकांत माँ काली के एकनिष्ठ उपासक होने के साथ ही एक अच्छे कवि एवं धार्मिक चेतना जागृत करने वाले युग पुरुष भी थे। स्थूल शरीर में रहने पर भी आज वे अपनी यश काया के रूप में, अपने भक्तिमय पदों के रूप में इस संसार में मौजूद हैं। हम लोगों के लिए प्रेरणास्रोत के रूप में सतत् विराजमान हैं।

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी चेदान्तानन्द
अनुवादक—डॉ० आशीष कुमार बनर्जी
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये।
यत्यतां पण्डितैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितैः ॥१०

वेदान्तश्रवणमननादि ब्रह्मज्ञान-लाभ की मुख्य साधना में तत्पर, उद्वेग-शून्य शास्त्रतात्पर्याभिज्ञ व्यक्तियों को सभी कर्मों का त्याग कर संसार-बंधन से मुक्ति-लाभ हेतु यत्नपरायण होना कर्तव्य है। १०

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥" ई, २

"जो व्यक्ति इस जगत् में सौ वर्ष जीवित रहना चाहता है, वह शास्त्र विहित कर्मों को करते हुए ही जीवित रहने की इच्छा करे। इस प्रकार देहाभिमानी व्यक्ति के लिए कर्म करने के सिवा कोई उपाय नहीं है, जिसके द्वारा अशुभ कर्म के फल के द्वारा लिप्त न होकर वह रह सके।"

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत्।"
गी, ३,५

"बिना कर्म किये कोई क्षणभर भी नहीं रह सकता।"

शास्त्रों में अनेक स्थलों में, इस प्रकार के कर्म अवश्य करने चाहिए ऐसा विधान दिया गया है। परन्तु, ये सभी विधियाँ संसार के सुख में आसक्त देहभिमानी व्यक्तियों के लिए हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों के लिए कर्म करना कर्तव्य है। सकाम कर्म का फल जब क्षणस्थायी एवं तुच्छ बोध होगा, तब निष्काम कर्म में प्रवृत्ति होगी। निष्काम कर्म के अनुष्ठान के फलस्वरूप जिनकी चित्तशुद्धि हुई है, वे ही ब्रह्मविचार के अधिकारी हैं। विवेच्य श्लोक में केवल सकाम कर्म के त्याग का विधान दिया गया है।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्म कोटिभिः ॥११॥

निष्काम कर्म के द्वारा चित्तशुद्धि होती है, परन्तु इसके द्वारा आत्मस्वरूप की उपलब्धि नहीं होती। केवल मात्र विचार द्वारा ही वस्तु स्वरूप की उपलब्धि होती है। परन्तु करोड़ों कर्मों के अनुष्ठान द्वारा लेशमात्र प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। ११

चित्त शुद्ध होने पर आत्मस्वरूप स्वतः प्रकाशित होता है।

सम्यग्विचारतः सिद्धा रज्जुतत्वावधारणा।
भ्रान्त्योदित महासर्पभयदुःखविनाशिनी ॥१२॥

यथार्थ दर्शन के अभाव के कारण रज्जु में सर्प दर्शन कर मनुष्य को जो भय होता है, एवं उस भय से हृत्कम्प आदि जिन दुःखों का अनुभव होता है दीपक की सहायता से रज्जु को रज्जु रूप में जानना उन दुःखों के निवारण का एकमात्र उपाय है ॥१२

जिस वस्तु में अन्य वस्तु को आरोपित कर भ्रम उत्पन्न होता है, उस अधिष्ठान के स्वरूप को जानने पर भ्रम की निवृत्ति होती है।

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः।
न स्नानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा ॥ १३ ॥

वस्तु का स्वरूप अनुकूल विचार द्वारा एवं वस्तु के स्वरूप को जानने वाले हिताकांक्षी सदगुरु के उपदेश द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। स्नान, दान अथवा सैकड़ों प्राणायाम के अनुष्ठान द्वारा वस्तु के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता।

अधिकारिणमाशास्ते फलसिद्धिर्विशेषतः।
उपाया देशकालाद्याः सन्त्यस्मिन्सहकारिण ॥१४॥

उपयुक्त अधिकारी को ही विचार का ठीक-ठीक लाभ होता है। अधिकारी के लिए निर्जन वास, ब्रह्ममुहूर्तादि काल, गुरु द्वारा सहायता आदि, यथार्थ ज्ञान के सहायक मात्र हैं ॥ १४

अधिकारी के लक्षण १६ वें एवं १७ वें श्लोक में कहे जायेंगे।

अतो विचारः कर्तव्यो जिज्ञासोरात्मवस्तुनः।
समासाद्य दयासिन्धुं गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम् ॥१५॥

इस कारण, ब्रह्मज्ञ, दयालु सद्गुरु को प्राप्त कर उनके निकट निरन्तर आत्मस्वरूप का विचार करना जिज्ञासु व्यक्ति का परम कर्तव्य है ॥१५॥

मेधावी पुरुषो विद्वानूहापोह विचक्षणः।
अधिकार्यात्म विद्यायामुक्तलक्षणलक्षितः ॥१६॥

सुने हुए उपदेशों की धारणा करने में समर्थ, सत्य-असत्य विचार में दक्ष एवं वेद सम्मत युक्तियों के ग्रहण में तथा वेद विरुद्ध युक्तियों के खंडन में निपुण—इस प्रकार के लक्षण-युक्त पुरुष ही आत्म-विद्या लाभ के अधिकारी हैं ॥१६

विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासा योग्यता मता ॥१७॥

ब्रह्मज्ञ व्यक्तियों का विचार है कि नित्यानित्य वस्तु-विचारशील, वैराग्यवान, शमादिगुण सम्पन्न मुक्ति काम साधक ही ब्रह्म विषय में ज्ञान लाभ का अधिकारी होता है ॥ १७

साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः।
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिद्धयति ॥१८॥

ज्ञानी व्यक्तियों ने आत्मजिज्ञासा हेतु चार साधन बताये हैं। इन चार साधनों के होने पर ही साधक में आत्मनिष्ठा उत्पन्न होती है। उनके अभाव होने पर आत्मज्ञान नहीं होता ॥१८

चार साधनों का वर्णन करते हैं :

आदौ नित्यानित्यवस्तु विवेकः परिगण्यते।
इहामुत्रफल भोग विरागस्तदनन्तरम्।
शमादिषट्क सम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ॥१९॥

चारों साधनों में पहला नित्यानित्य वस्तु-विवेक है। इसके बाद लौकिक एवं पारलौकिक सुख-भोग में वैराग्य, शमादि-षट्सम्पत्ति एवं मुमुक्षुता ।१९।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः ॥
सोऽयं नित्यानित्य वस्तु विवेकः समुदाहृतः ॥२०

"ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, इस प्रकार का दृढ़ निश्चय ही नित्यानित्य वस्तु विवेक कहलाता है। २०

विचार कर देखने से जगत की कोई वस्तु नित्य अर्थात् चिरस्थायी नहीं है। सब कुछ ही परिवर्त्तनशील एवं विनाशशीला है। जो वस्तु कल मेरे लिए अति मनोरम थी, आज वह अति तुच्छ घृण्य अथवा त्याज्य है। हमलोग इन सभी परिवर्तनशील एवं क्षणभंगुर वस्तुओं को सत्य एवं सुखदायक समझकर पकड़े रहते हैं एवं जन्म जन्मान्तर तक, इस क्षण सुख तथा दूसरे ही क्षण दुःख का अनुभव करते हैं। विचार द्वारा, जगत की सभी वस्तुओं को मिथ्या तथा ब्रह्म ही नित्य सत्य है, इस प्रकार के दृढ़ प्रत्यय को नित्यानित्य विवेक कहते हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन का कार्य

—आब्जर्वर
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने एक बार कहा था कि रामकृष्ण मिशन बिना किसी विज्ञापनबाजी अथवा धूम धाम के चुपचाप काम किये जाता है। पण्डितजी ने मिशन की मौन कार्य-कुशलता की प्रशंसा की और आडम्बरहीन संन्यासियों द्वारा परिचालित मिशन भी प्रसिद्धि की चकाचौंध से दूर ही रहना चाहता है। परन्तु प्रचार के इस युग में जनता यह जानना चाहती है कि कोई संस्था-विशेष अपने संकलित संसाधनों को किस प्रकार व्यय करती है। यदि प्रचार की उपेक्षा की गयी तो बहुधा लोग भ्रान्त धारणा बना लेते हैं कि यह संगठन कुछ भी नहीं कर रहा है और उसी परिमाण में लोगों के सहयोग की मात्रा भी घट सकती है। अतः आज के युग में अपने जनहितकर तथा सेवा-कार्य में प्रभावी होने के लिए, एक संस्था को, अनिच्छा पूर्वक ही सही, अपने क्रियाकलापों का लेखा-जोखा देना पड़ता है।

काफी लोगों को इस उक्ति की सत्यता एक प्रत्यक्ष उदाहरण के द्वारा समझ में आ जाएगी। कुछ लोगों के मन में एक निराधार धारणा हो गयी है कि रामकृष्ण मठ और मिशन केवल शहरी क्षेत्रों में और वह भी सिर्फ मध्यवर्गीय लोगों के बीच कार्यरत है। यह धारणा पूर्णतः गलत है। परन्तु हम यहाँ इस विषय पर विस्तार से चर्चा नहीं करने जा रहे हैं, वरन् इसके एक विशेष अंश पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे और वह है—आदिवासियों के बीच मठ और मिशन का कार्य।

कुछ महीनों पूर्व वर्त्तमान लेखक को नेफा* के सियांग डिवीजन के मुख्यालय अलांग जाने का अवसर मिला था। यह स्थान भारत, वर्मा और चीन के प्रायः मिलनबिन्दु पर स्थित है। अलांग से कई मील पूर्व एक गहरी घाटी में विशाल एवं पूत नद ब्रह्मपुत्र का शुभ्र जल प्रवाहित होता है जिसे स्थानीय भाषा में सियांग के नाम से जानते हैं। इस नद के नाम पर ही इस डिवीजन का नामकरण हुआ है। नेफा के अन्य डिवीजनों के नाम भी उनसे होकर अथवा उनकी सीमा से लगकर बहने वाली नदियों के नाम पर रखा गया है—कामेङ्, सुबन्सिरी, लोहित और तिराप। अलांग पूर्वी हिमालय की गोद में काफी भीतर बसा हुआ है, जहाँ से लगभग १५० किलोमीटर दूर उत्तरी सीमान्त रेलवे का निकटतम रेलवे स्टेशन शिलापाथर है। यह लघु कस्बा अलांग के साथ एक अच्छी पहाड़ी सड़क से जुड़ा हुआ है। शिलापाथर से कोई १०० किलोमीटर पूर्व में लीलाबारी (अब लखीमपुर) का हवाई अड्डा है, जहाँ से एक अच्छी सड़क ब्रह्मपुत्र के समानान्तर लीलाबारी की निचली पहाड़ियों तक चली आयी है। लीलाबारी के निकट की एक पहाड़ी पर एक मन्दिर के भग्नावशेष मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि कभी इन पर्वतीय लोगों का मैदानी अंचल के लोगों से बड़ा अन्तरंग सांस्कृतिक

* सम्प्रति 'अरुणाचल प्रदेश' के नाम से इसे भारत के एक पूरे राज्य का दर्जा दिया जा चुका है। —(अनु०)

सम्बन्ध रहा होगा। वहाँ बिखरे सुन्दर खुदाई से युक्त शिलाखण्ड उक्त भूतपूर्व देवालय की भव्यता की गवाही देते हैं, जिसमें कभी दुर्गादेवी की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। उस दशभुजा मूर्ति का सिर भग्न है चुका है पर बाकी सब ठीक है। स्थानीय लोगों में वे मालिनी के नाम से सुपरिचित हैं। ब्रिटिश शासन के दिनों में मैदानी भाग के लोगों का इन पहाड़ों में आना निषिद्ध था, अतः पिछली अनेक दशाब्दियों से उनका भारतीय संस्कृति से सम्पर्क टूट गया है। यहाँ के आदिवासी सूर्य और चन्द्रमा इन दो देवताओं पर आधारित सांस्कृतिक संरचना के अनुसार अपना अलग-अलग जीवन बिताते रहे हैं। अंग्रेज तथा भारतीय दोनों ही उन्हें समान रूप से विजातीय प्रतीत होते थे, अतः वे दोनों से ही दूर रहे। परन्तु इस शताब्दी के छठे दशक से और विशेषकर चीनी आक्रमण के बाद से हालत में सुधार हुआ है। अब वहाँ चारों ओर प्रगति के वेग को बढ़ाने के लिए तथा आदिवासियों को आधुनिक सभ्यता के प्रकाश में लाने के लिए सरकार भी काफी व्यय कर रही है। बाह्य जगत् के साथ इन लोगों का सम्पर्क जोड़ने में रामकृष्ण मिशन का योगदान भी कम नहीं रहा है।

१९६६ ई० में रामकृष्ण मिशन ने आदिवासी बालक एवं बालिकाओं के लिए अलांग कस्बे के निकट एक आवासीय प्राथमिक विद्यालय प्रारम्भ किया। यहाँ अध्ययन करने वाले सभी विद्यार्थी स्कूल परिसर में ही बाँस तथा अन्य स्थानीय चीजों से बनी झोपड़ियों में निवास करते थे। विद्यालय का भवन भी इसी पैटर्न पर बना था। आदिवासी लोग अंग्रेजी भी सीखना चाहते थे और उस अंचल में यही एकमात्र ऐसा स्कूल है जो एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से सुविस्तृत विश्व के साथ उन्हें अधिकाधिक सम्पर्क प्रदान कर सकता था। आदिवासी लोग ज्ञान तथा आत्माभिव्यक्ति के लिए उत्सुक थे और उनके बच्चे भी काफी बुद्धिमान थे। उस प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व काफी कम है—चार व्यक्ति प्रति वर्गमील है। अतः विद्यार्थी दूर दूर के गाँवों से आये। इस कारण विद्यालय को आवासीय बनाना पड़ा परन्तु इसके फलस्वरूप मिशन को उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आकर उनकी आकांक्षाओं के साथ एकात्म होने का भी अवसर मिला। उन लोगों ने भी मिशन का हार्दिक स्वागत किया, आवश्यकतानुसार जगह दी, स्कूल तथा अपने बच्चों के आवास हेतु कुटीरों का निर्माण किया और सभी प्रकार से इस योजना में सहायक हुए। मिशन के संन्यासियों ने भी उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया और इस तरह उनके हृदय पर विजय पा ली। भारत सरकार ने भी उदारतापूर्वक आर्थिक तथा अन्य प्रकार से मिशन की सहायता की। और इस प्रकार अलांग के इतिहास का वह महत्वपूर्णक दिन आया जब ६ दिसम्बर १९६९ ई० को भारत के तत्कालीन गृहमंत्री श्री यशवन्तराव चव्हाण ने ने लगभग १४ लाख रुपयों की लागत से निर्मित मिशन के नये स्कूल तथा छात्रावास के भवनों का उद्घाटन किया।

उस दिन वहाँ पर एक महा उत्सव का दृश्य उपस्थित हो गया था। आदिवासीलोगों ने उस स्थान को द्वार, तोरण, वन्दनवार तथा पताकाओं से सजाने के लिए और सभा के हेतु एक मंच बनाने के लिए दिन रात परिश्रम किया। सब कुछ आदिवासी परम्परा के अनुसार ही बाँस तथा खर पतवार से निर्मित हुआ था। इस अवसर को बड़ा महत्व दिया गया था और इस समारोह में भाग लेने को गृहमंत्री सुदूर दिल्ली से विमान में आये और उनके साथ शिलांग से राज्यपाल श्री बी० के० नेहरू तथा नेफा प्रशासन के अनेक अधिकारी भी आये। रामकृष्ण मिशन के महासचिव ने सभा की अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि के रूप में पहले

राज्यपाल का व्याख्यान हुआ और तत्पश्चात् गृहमंत्री ने एक सुन्दर भाषण दिया। कुछ आदिवासी नेता भी हिन्दी में बोले और अन्त में मिशन के महासचिव ने उन आदर्शों एवं विचारों पर प्रकाश डाला, जिन्हें रामकृष्ण मिशन आदिवासी लोगों के बीच कार्यान्वित करना चाहता है।

महासचिव स्वामीजी ने सभा को बताया कि श्री रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द ने मानव में निहित दिव्यता को अभिव्यक्त कर मानव के गौरव को उन्नीत कर दिया है। उन्होंने अपने अनुयाइयों को आह्वान किया है कि वे लोग अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए इस दिव्यत्व की पूजा करें। फिर स्वामी विवेकानन्द ने अन्य लोगों के दृष्टिकोण तथा संस्कृति को न केवल सहन वरन् सम्मानित करने का निर्देश दिया है। अतः मिशन सेवारूपी पूजा का भाव लेकर आदिवासियों में जाता है और बिना किसी निन्दावाद को प्रश्रय दिये उनकी निजी प्रतिभा को बढ़ावा देता है। उनकी सांस्कृतिक परम्परा से प्रेम किया जाता है, रक्षा की जाती है और पूरी श्रद्धा के साथ उनके देवताओं की पूजा की जाती है; इसके अतिरिक्त मिशन बाहर से भी ज्ञान का आनयन करता है। मिशन के माध्यम से ये लोग मैदानी अंचल की संस्कृतियों का परिचय पाते हैं। उन्हें स्वाधीनता दी जाती है कि वे स्वयं इनका मूल्यांकन करें और जितना उचित लगे उसे अपना कर आत्मसात् कर लें।

मिशन को अपने कार्य में सफलता मिली है और आदिवासी लोग उत्सुकतापूर्वक चाहते हैं कि यह कार्य नेफा के अन्य भागों में भी फैले। नेफा का प्रशासन भी इस विषय में समान रूप से उत्साही है। अतः संन्यासी कर्मियों की सीमित संख्या के बावजूद इसके परवर्ती वर्ष ही मिशन को नेफा की पूर्वी डिवीजन तिराप में भी ऐसा ही एक केन्द्र आरम्भ करना पड़ा।*

नेफा से विदा लेकर अब हम भी खासी पहाड़ियों की ओर चलते हैं जो अब भी अत्यन्त पिछड़े आदिवासी लोगों की निवासभूमि मानी जाती है, परन्तु वास्तविकता तो यह है कि खासी जनजाति के लोग अब सांस्कृतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से काफी उन्नत हो चुके हैं और ये लोग सहजता से भारत के अन्य भाग के निवासियों के साथ समानता का दावा कर सकते हैं, तथापि कई कारणों वश इन्हें आदिवासी अंचल कहना ही अधिक समीचीन होगा।

लगभग आधी शताब्दी पूर्व मिशन ने इन पहाड़ियों में कार्य आरम्भ किया और विदेशी शासन के विद्वेष तथा मिशनरियों की प्रतिद्वन्द्विता के बीच से शनैः शनैः अपना पथ प्रशस्त किया। अब खासी पहाड़ी के प्रायः पूरे दक्षिणी भाग में इसका कार्य दृढ़मूल हो चुका है। इस कार्य का संचालन चेरापुंजी में स्थित मिशन के एक तीव्र गति से विकासमान ग्रामीण केन्द्र से होता है।

चेरापुंजी काफी काल से भारी वर्षा के लिए विख्यात रहा है और अब एक सीमेंट उद्योग तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा आयोजित विविध प्रकार के क्रियाकलापों के लिए प्रसिद्ध है। वहां रामकृष्ण मिशन का एक उच्च विद्यालय तथा विद्यार्थियों के लिए छात्रावास है। इस चेरापुंजी केन्द्र के अधीन २१ माध्यमिक अंग्रेजी विद्यालय तथा २७ प्राथमिक शालाएँ चलती हैं।

*सम्प्रति अरुणाचल प्रदेश में एक तीसरा केन्द्र भी शुरू किया गया है। प्रदेश की राजधानी ईटानगर में मिशन ने १९७९ ई० में एक अस्पताल का निर्माण किया है, जिसमें इस समय १०० बिस्तर हैं।—(अनु०)

इन शिक्षा संस्थाओं में कुल मिलाकर करीब २२०० छात्र-छात्राएं हैं।

इनमें से शेल्लापुंजी तथा शोभारपुंजी की संस्थाएं विशेष उल्लेखनोय हैं। ये दोनों गांव खासी पहाड़ी की दक्षिणी ढलानों पर बसे हैं, जहाँ से नीचे सिलहट का विस्तृत मैदानी भाग दीख पड़ता है, (जो अब बंगलादेश में है)। इन गांवों ने पहले अच्छे दिन देखे हैं, तब यहाँ के निवासी अपने सन्तरे, सुपारी तथा पहाड़ के अन्य उत्पादन नीचे जाकर लोगों को बेच आते थे और वे लोग इन्हें और भी पश्चिम के बाजारों तक ले जाते थे। परन्तु देश के विभाजन के बाद से उनकी आय के स्रोत बन्द हो गये। सम्प्रति ये लोग शिक्षा तथा जीविका के अन्य साधनों के सहारे अपना भाग्य सुधारने का प्रयास कर रहे हैं।

शेल्ला ग्राम पहाड़ी के प्रायः मूल में ही बसा हुआ है जिसके नीचे एक सुन्दर वेगवती नदी बहती है। इसके निवासियों का सदा से ही हिन्दू धर्म के साथ विशेष लगाव रहा है। इस ग्राम के शासक शेल्ला दरबार अपने पड़ोसी सिलहट से सांस्कृतिक प्रेरणा गहण करते थे। और भी थोड़ी ऊँचाई पर बसा शोभारपुंजी मैदानी संस्कृति के साथ आन्तरिक रूप से जुड़ा था। इसके पड़ोस के महादेव ग्राम में शिवजी का एक मन्दिर है, जिसमें अब भी दैनान्दिन पूजा होती है। उपर्युक्त सम्पर्क विच्छिन्न हो जाने के बाद से रामकृष्ण मिशन निष्ठापूर्वक इन लोगों का साथ देता रहा है और शेल्लापुंजी में प्रतिवर्ष दुर्गापूजा तथा अन्य स्थानों में भी विविध समारोहों का आयोजन करके इस अभाव को पूरा करने का प्रयास करता रहा है। शेल्ला और शोभार में श्री रामकृष्ण के स्थायी मन्दिर हैं, जिनमें ग्रामवासी प्रतिदिन पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त इन दोनों स्थानों में एक एक लोअर सेकेण्डरी स्कूल तथा शोभार में एक दस्तकारी विभाग भी है।

इन शैक्षणिक कार्यों के अतिरिक्त चेरा का मुख्य केन्द्र पास-पड़ोस के ग्रामवासियों को मधुमक्खी पालन सिखाता है तथा उनके उत्पादन के विक्रय को भी व्यवस्था करता है। इसके ९ मधुमक्खी पालन केन्द्रों में ७००० पेटिकाओं से २८,००० किलोग्राम शहद का उत्पादन होता है।

वहाँ से निकट ही स्थित शिलांग के मिशन में चल चिकित्सालय है जो प्रति वर्ष ३० गाँवों के १६,००० रोगियों की चिकित्सा करता है। फिर शिलांग में ही निःशुल्क दवाखाना भी ४५,००० रोगियों की सेवा करता है, जो वस्तुतः आदिवासी हैं पर उनका जीवन भी अब काफी जटिल हो चुका है। उनके छात्रावास में २५ खासी तथा अन्य आदिवासी विद्यार्थियों के निःशुल्क रहने की व्यवस्था है।

मिशन ने खासी भाषा में पुस्तकें निकाल-कर, भजनों को रचना कर तथा भारतीय सुरों को लोकप्रिय बनाकर उस भाषा के विकास में भी योगदान किया है।

खासी पहाड़ों के बाद अब हम रांची की ओर चलते हैं। वहाँ मोराबादी पहाड़ के नीचे मिशन ने 'दिव्यायन' नामक एक संस्था का निर्माण किया है। यह एक आवासीय प्रशिक्षण केन्द्र है जिसमें छोटे आदिवासी किसानों को वैज्ञानिक कृषि, कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन तथा पशु पालन आदि की शिक्षा दी जाती है और साथ ही उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि वे किस प्रकार अपने गाँवों में समाज कल्याण के कार्यक्रम संगठित करें। इन प्रशिक्षार्थियों को शिक्षा, भोजन, आवास, यूनिफार्म तथा आवश्यकता की अन्य सारी चीजें मुफ्त दी जाती हैं। ये लोग आश्रम में आयोजित होने वाले आदिवासी उत्सवों तथा अन्य धार्मिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं।

दिव्यायन से प्रशिक्षित होकर निकले लोगों में से अनेकों ने आधुनिक लघु कृषि क्षेत्रों का विकास किया है। वे स्वयं ही इसके स्वत्वाधिकारी तथा प्रबन्धक हैं। इस प्रसंग में पटपटो नदी के तट पर स्थित भीटा का एक फार्म विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पिछले नवम्बर (१९६९ई०) तक वह जमीन बेकार पड़ी थी। फिर दिव्यायन के एक पूर्व-प्रशिक्षार्थी ने अपने दो मित्रों की सहायता से अपनी सीखी हुई विद्या को कार्य रूप में परिणत किया और अब वहाँ स्प्रिंकलर द्वारा सिंचित १५ एकड़ का एक फार्म लहलहा रहा है। हमें आशा है कि ऐसे और भी अनेक फार्मों का विकास होगा। जिस जमीन पर कोई भी पैदावार नहीं होती थी, आज वहाँ तीन-चार फसलें काटी जा रही हैं।

पहले बैच के १० प्रशिक्षार्थी आश्रम से आठ मील दूर चामा नाग्री में अच्छा काम कर रहे हैं। जिस खेत में पहले १०० मन धान होता था, उसमें पिछले मौसम में ५०० मन से भी अधिक पैदावार हुई। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर एक पूर्व प्रशिक्षार्थी का अपना विकसित किस्म की मुर्गियों का एक फार्म है। आशा है, ऐसे ही दूसरे लोग भी प्रगति करेंगे।

दूर दूर के गाँवों में मिशन के २४ दुग्ध वितरण केन्द्र हैं, जिन्हें चलाने वालों में अधिकांश दिव्यायन के पूर्व -प्रशिक्षार्थी हैं। इनके माध्यम से प्रतिदिन प्राय: २५०० बच्चों को दूध उपलब्ध कराया जाता है। आश्रम का दवाखाना तथा चल-चिकित्सालय बहुत से आदिवासी रोगियों की सेवा करते हैं। काफी लोगों को विटामिन तथा पौष्टिक कैप्सूल भी दिये जाते हैं।

कुछ दुग्ध वितरण केन्द्र के स्वयंसेवकों ने खेल कूद तथा क्रीड़ा की भी व्यवस्था की है। पिछले जाड़ों में इन केन्द्रों के लड़कों के लिए आश्रम में जो क्रीड़ा स्पर्धा हुई वह भी एक नयी सफलता थी और आदिवासी लोगों ने इसमें बड़ी संख्या में भाग लिया था।

आदिवासी युवक अपने गाँवों में सामाजिक तथा शैक्षणिक कार्यक्रमों का आयोजन करने में भी बड़ी रुचि लेते हैं और इसमें वे दिव्यायन में अर्जित ज्ञान का पूरा पूरा उपयोग करते हैं। इस प्रकार इन्होंने अपने गावों में रात्रि-पाठशालाएं खोली हैं, जिनकी व्यवस्था वे स्वयं ही करते हैं।

इसके अतिरिक्त पुरी, सिलचर, शिलांग, कालडी, नरेन्द्रपुर और पुरुलिया में छात्रावास हैं जिनमें १६० आदिवासी छात्रों को आश्रय मिलता है। यहां पर उन्हें भारत के अन्य अंचलों के लड़कों के साथ निःसंकोच तथा स्नेहपूर्वक मेलजोल का अवसर मिलता है। ये लोग उनकी जीवन-पद्धति का अवलोकन करते हैं और जो कुछ उन्हें पसन्द आता है, अपनाते हैं तथा जीवन भर के लिए मित्र बन जाते हैं। मैदानी तथा शहरी अंचल के लड़के भी आदिवासी लोगों के सद्गुणों का सम्मान करते हैं और उनके प्रति प्रेमपूर्ण बर्ताव करते हैं। इन संस्थाओं के द्वारा बिना किसी सक्रिय प्रयास के ही राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलता है।

रामकृष्ण मिशन निःसंकोच स्वीकार करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान से मूल्यांकन करने पर विशाल भारतीय आवश्यकताओं की तुलना में अब तक किया हुआ उनका कार्य कम से कम परिमाण की दृष्टि से तो कुछ खास प्रभावशाली नहीं है। परन्तु मिशन के पास उपलब्ध संन्यासी कर्मियों की सीमित संख्या तथा देश में निर्धनता के प्रसार की दृष्टि से विचार किया जाय तो मिशन ने जितने कार्य को अपना लक्ष्य बनाया है उसकी तुलना में प्राप्त हुई सफलता कम नहीं है।

सबसे अधिक महत्व की बात तो यह है कि मिशन ने राष्ट्र के लिए आदिवासी लोगों का दिल जीत लिया है। अब वे लोग सोचते हैं कि भारत-वासियों के हाथ में उनके हित सुरक्षित हैं, और भारत के साथ मेल-जोल रखने पर भी उनके अपने धर्म एवं संस्कृति के लुप्त होने का भय नहीं। इसके साथ ही वे यह जानकर भी निश्चिन्त हैं कि उन्हें अपने देशवासियों के बीच अधिकाधिक सम्मान मिलेगा और एक उच्चतर जीवन स्तर तथा आत्मा-अभिव्यक्ति के लिए भी प्रचुर अवसर प्राप्त होगा।

—×—

सद्य प्रकाशित

नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है ? किस अवस्था में रहता है ? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है ? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ :

मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००६

धारावाहिक

स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

१२. साधक-जीवन

[साधक लाटू की ध्यान-धारणा, ध्यान किसका, ठाकुर का साधना सम्बन्धी संकेत, ठाकुर की समाधिमूर्ति पर लाटू का ध्यान, भक्त प्रसंग में, गुरु और इष्ट अभेद हैं, कीर्तनानन्द में लाटू, खोका महाराज कथित प्रसंग, दिव्य संकेत, संकेत पाकर लाटू की व्याकुलता, राखाल महाराज कथित एक प्रसंग, कुलकुण्डलिनी का जागरण, ज्योतिर्मय शिवलिंग का दर्शन और रामलाल दादा कथित प्रसंग, योगीन महाराज कथित लाटू की वर-कामना का प्रसंग, ध्यान में ज्योतिर्घनमूर्ति का अविर्भाव, बूढ़े गोपाल दादा कथित प्रसंग—लाटू महाराज ज्वार में बहने ही वाले थे, जगदम्बा का दर्शन पाकर लाटू को भावावेश और ठाकुर द्वारा उनकी छाती सहलाना इष्टदर्शन के पाश्चात् ध्यान में विभिन्न देवी-देवताओं का दर्शन, योगमाया की विभूति का दर्शन कर लाटू का दिल दहलाना और ठाकुर द्वारा अभयप्रदान, बेल के पेड़ तले योगनिद्रामग्न लाटू और कुत्तों के रूप में भैरवगण द्वारा उसकी रक्षा, लाटू की लीन अवस्था, यदु मल्लिक के उद्यान में केले के पत्ते काटने का प्रसंग]

पिछले अध्याय में हम लाटू की तपस्या के बारे में कह आये हैं। उस सन्दर्भ में हमने लिखा है कि ठाकुर ने उन्हें नाम लेने के साथ ही नामी पर ध्यान करने को भी कहा था। नामी पर ध्यान किस प्रकार करना होगा यह भी ठाकुर ने अवश्य ही उन्हें बताया था, परन्तु दुर्भाग्यवश हमें ठाकुर के वे अमूल्य उपदेश नहीं प्राप्त हुए। क्योंकि स्वयं लाटू महाराज अथवा उनके गुरुभाइयों ने इस विषय में कुछ व्यक्त नहीं किया। साधक लाटू की ध्यान-धारणा के विषय में हम जो कुछ यहाँ लिपिबद्ध कर रहे हैं, उसका अधिकांश ही वार्तालाप और सत्संग से संग्रहीत हुआ है।

ध्यान-धारणा के समय जो प्रश्न साधक के मन में जागते हैं उनमें प्रमुख है—'ध्यान किसका करूँ'। बलराम मन्दिर में एक भक्त ने ठीक यही प्रश्न लाटू महाराज से किया था। इसके उत्तर में उन्होंने कहा था—'एकमात्र भगवान ही ध्येय हैं। भगवान को छोड़ और किसकी ध्यान-धारणा करोगे? चाहे जिसको भी पकड़कर आगे बढ़ो, अन्त में उन्हीं के पास जा पहुँचोगे।'

इस पर उस भक्त ने प्रश्न किया—'शिव, काली, विष्णु चाहे जिस मूर्ति का भी ध्यान करूँ अन्त में उन एक ही भगवान के पास जा पहुँचूगा। महाराज! यह बात सुनने में क्या थोड़ा सन्देहजनक नहीं लगता?"

लाटू महाराज—देखो! लोग उनसे (ठाकुर से) इसी तरह की बातें पूछा करते थे। एक जन को उन्होंने बताया था—'तुम्हें जो मूर्ति अच्छी लगेगी, उसी का ध्यान करना। सभी मूर्तियाँ उन्हीं की हैं, भाव के भेद से मूर्तियों में भेद है।' किसी के प्रति विद्वेष रखने को

- 9 JUL 1989

22 NOV 1989
- 2 MAY 1990

वे मना करते थे। शिव, काली, हरि सबको वे एक का ही भिन्न-भिन्न रूप बतलाते थे।

भक्त—महाराज ! देवी-देवतागण हो सकता है भगवान के ही भिन्न-भिन्न रूप हों, परन्तु गुरु भी क्या वे ही हैं ? पार्थिव गुरु तो मनुष्य हैं, क्या उनका ध्यान करके भी भगवान तक पहुँचा जा सकता है !

लाटू महाराज क्यों नहीं ? तुमलोग तो सोचते हो कि गुरु भी तुम्हारे समान ही एक मनुष्य हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं। गुरु सच्चिदानन्द हैं। जिसने भगवान को देखा है, वही ठीक ठीक गुरु हो सकता है। सब असल गुरु नहीं है। असल गुरु का मन सर्वदा उन्हीं से युक्त रहता है। इसीलिए उनके (भगवान के) साथ असल गुरु का कोई भेद नहीं रहता। शास्त्र में यही बात लिखी है—'गुरु और ब्रह्म एक हैं।'

भक्त—जो साधक असल गुरु को नहीं धर पाता, उसका क्या होता है, महाराज ?

लाटू महाराज—अरे ! उसे भी भगवान की प्राप्ति होती है, पर देरी से होती है। पर गुरुवाक्य को छोड़ना नहीं चाहिए। (लोग चाहे जो कहें) गुरु पर कभी संशय नहीं करना चाहिए। क्योंकि गुरु पर संशय करने से गुरु के गुरु का सन्धान नहीं मिलता। गुरु यदि उतने उपयुक्त न भी हों (पर शिष्य को भगवत्प्राप्ति के लिए ठीक-ठीक व्याकुलता हो) तो गुरु के गुरु जो हैं (अर्थात् भगवान) वे ही शिष्य की आन्तरिक चेष्टा देखकर उसके हृदय में बैठे सब निर्देश देते रहते हैं।

लाटू महाराज की बातें सुनकर भक्त ने पुनः प्रश्न किया—'तो फिर क्या आपका कहना है कि किसी भी गुरु का आश्रय लेकर भगवान की प्राप्ति हो सकती है ?'

लाटू महाराज—हाँ, हो सकती है। परन्तु ऐसी परिस्थिति में साधक को ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है। कच्चे-गुरु के हाथ में पड़ जाने पर साधक को बड़ा भटकना पड़ता है। वे कहा करते थे—'गुरु कच्चा होने पर, गुरु को भी परेशानी होती है और शिष्य को भी तकलीफ होती है।' परन्तु गुरुवाक्य पर ठीक-ठीक निष्ठा रहे तो एक न एक दिन उसी से भगवान की प्राप्ति हो जाती है। जानते हो क्यों ?—गुरु जो मन्त्र देते हैं वह तो उन्हीं (भगवान) को लक्ष्य करके देते हैं। इसीलिए मन्त्र या नाम में कोई दोष नहीं होता; गुरु से दीक्षा लेकर साधना करने पर वस्तुलाभ अवश्य होगा।

भक्त—क्या मन्त्र के ध्यान से भी वस्तुलाभ होता है ? अच्छा ! बहुत से लोग तो गुरुमन्त्र का ध्यान न करके गुरुमूर्ति का ही ध्यान करते हैं—उनका क्या होता है, महाराज ?

लाटू महाराज—गुरुमूर्ति के ध्यान से भी भगवान की प्राप्ति होती है। परन्तु गुरु की जो कोई भी मूर्ति नहीं लेनी चाहिए—गुरु जब उन (भगवान) से युक्त होते हैं, ऐसी मूर्ति का ध्यान करना चाहिए।

भक्त—ऐसा क्यों, महाराज ?

लाटू महाराज—अरे, तब गुरु के भीतर उनका (भगवान का) आविर्भाव होता है। उसी आकर्षण के खिचाव से साधक की उन्नति हो जाती है। इसीलिए तो वे हमलोगों से कहा करते थे 'देख ! ध्यान में बैठने के पहले इसका (मेरा) चिन्तन कर लेना। इसका चिन्तन करते ही उनकी याद आ जाएगी।'

ऐसा लगता है कि साधक लाटू को ध्येय के बारे में ठाकुर से कुछ ऐसा ही संकेत मिला था। लाटू के समान निरपेक्ष भावुक साधक गुरुमूर्ति को ही ध्येय बनाकर साधनपथ में अग्रसर हुआ था। हमें अभी तक ऐसा कुछ सुनने को नहीं मिला कि ठाकुर ने लाटू को अन्य कोई इष्टमन्त्र दिया था। इसके अतिरिक्त निम्न-लिखित कथोपकथन से ऐसा प्रतीत होता है कि साधक लाटू ठाकुर की समाधिमूर्ति को ही मानसपटल पर अंकित करके साधना में बैठता था।